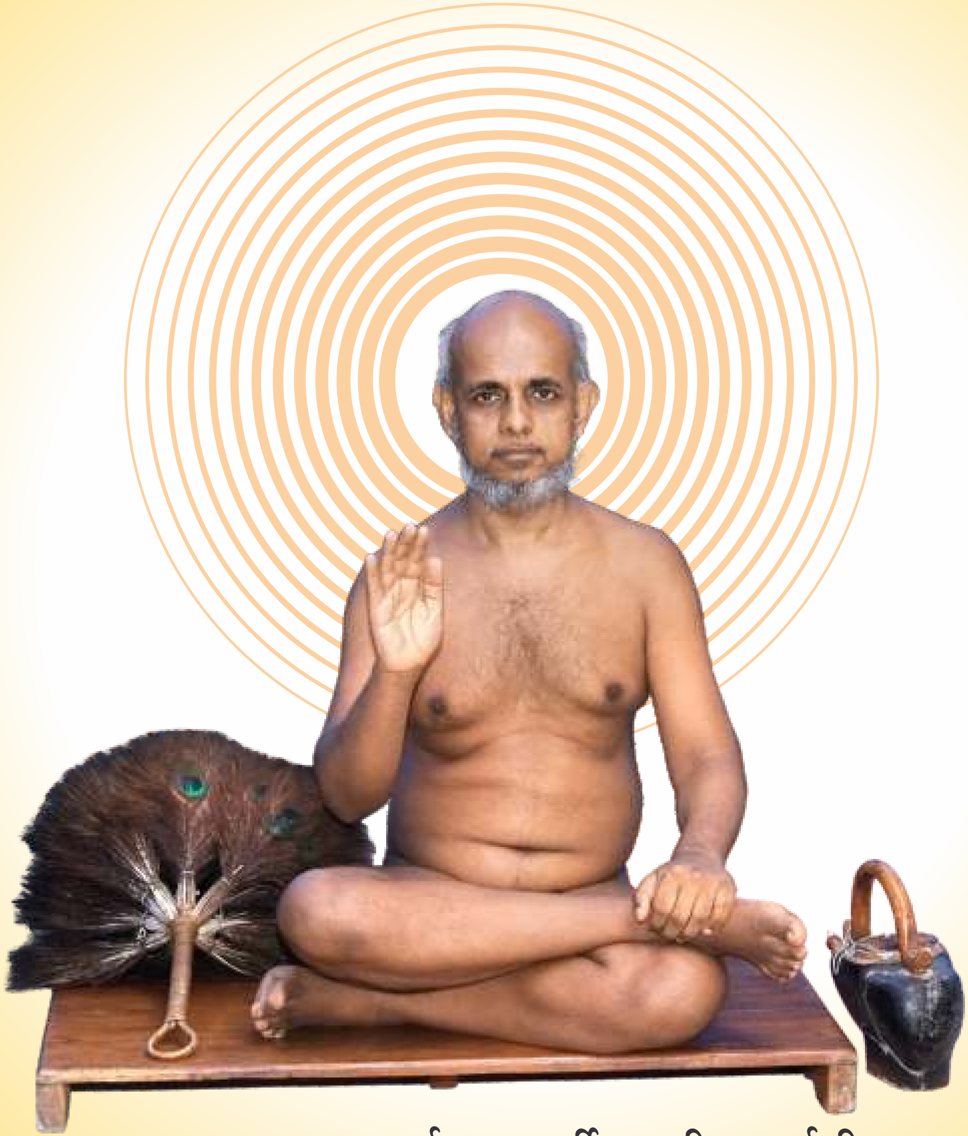

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19–03–1971 * मुनिदीक्षा–11–05–1989 * आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणाः–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

40 जैनव्रत कथा संग्रह

लेखक
दीपचन्द जी वर्णी

प्रकाशक
दिगम्बर जैन पुस्तकालय
सूरत (गुजरात)

(परम्परानायक)

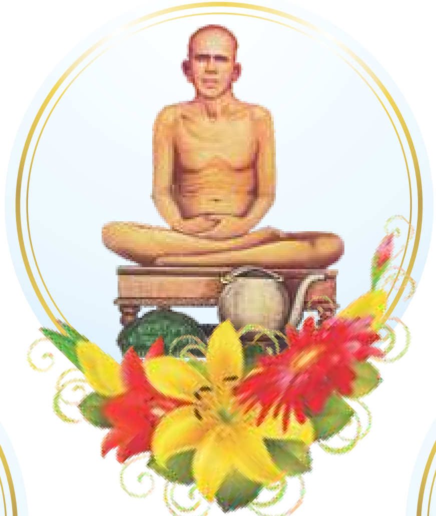

परम पूज्य चारित्र–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त–शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

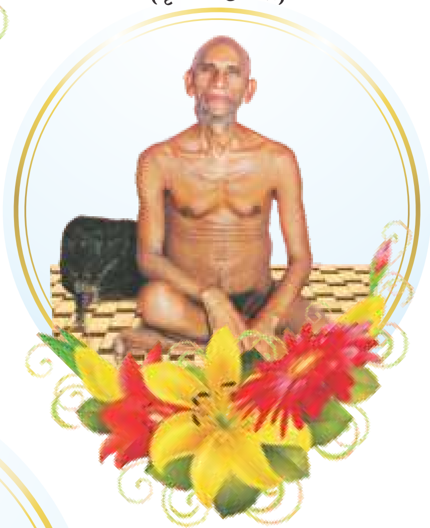

परम पूज्य सिद्धान्त–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्राय: होता है। फलत: उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तुत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि–परिवार

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

ॐ

श्री जैनव्रत कथासंग्रह

(४० व्रत-कथाओं का संग्रह)

--: संशोधक, संग्रहकर्ता और लेखक :--

स्व. धर्मरत्न पं. दीपचंद वर्णी (नरसिंहपुर)

-: प्रकाशक :-

शैलेश डाह्याभाई कापडिया

दिगम्बर जैन पुस्तकालय

गांधीचौक, सूरत-३

टाईप सेटींग एवं ऑफसेट प्रिन्टींग

जैन विजय लेसर प्रिन्ट्स

खपाटिया चकला, गांधीचौक,

सूरत-३. ☎ (0261) 7427621

मूल्य : रू. ३०-००

प्रस्तावना

जैन धर्ममें व्रत उपवास करनेका रिवाज व प्रभाव बहुत है क्योंकि इससे अपने जीवनमें व स्वास्थ्यसे बहुत लाभ होता है। गुजरातमें तो व्रत उपवास करनेका अधिक रिवाज है। १०-१० उपवास करनेवाले बहुत होते हैं।

व्रत व पर्व अनेक हैं व उनकी कथाएं शास्त्रोंमें प्रचलित हैं जो पुस्तकाकार छपनेकी बड़ी आवश्यकता थी जिसको हमने आजसे ६५ वर्ष पूर्व की थी अर्थात् मराठी, हिन्दी पद्य व्रत कथाएं संग्रह कर हमने विद्वान लेखक पं. दीपचंदजी वर्णी नरसिंहपुर नि. से २८ जैनव्रत-कथाएं प्रगट की थी जो बहुत लोकप्रिय हुई व आज तक उसकी १५ आवृत्तियां बिक चुकी तब अबकीबार इसकी १ ६ आवृत्ति ४० जैन व्रत कथाएं सहित प्रगट की जाती हैं तथा साथमें १४४ व्रत कथाओंकी सूची भी दे दी गई हैं।

ये जैन व्रत कथाएं प्राचीन व सच्ची हैं। कोई भी व्रत करना हो तो उसकी विधि व कथा जाननेकी बहुत जरूरत होती है अतः यह व्रत कथा संग्रह ही सारे भारतमें बहुत उपयोगी हो गया है।

कोई भी व्रत करें तब उसके उद्यापनके उपलक्षमें यह जैन व्रत कथा संग्रह सगे सम्बन्धी व मंदिरोंमें बांटना चाहिए जिससे व्रतोंका विशेष प्रचार हो सके। आशा है कि यह पंद्रहवीं आवृत्तिका भी शीघ्र प्रचार हो जायगा।

निवेदक -

सूरत वीर सं. २५२८ — स्व. मूलचंद किसनदास कापड़िया

कारतक सुदी १५ — शैलेश डाह्याभाई कापड़िया

प्रकाशक।

पं. बारेलालजी जैन राजवैद्य पठा द्वारा संग्रहीत -

१४४ प्रकारके व्रतोंकी सूची

अष्टान्हिका	सोलहकारण	दशलक्षण
षटरसी	ज्येष्ठ जिनवर	रविव्रत
समकित चौवीसी	भावना पच्चीसी	पल्यविधान
भाद्रवनसिंहनि: क्रीडित	लघुसिंहनिष्क्रिडीत	त्रिगुणसार
धर्मचक्रव्रत	बृहदधर्मचक्रव्रत	बृहद्जिनेंद्रगुण संपत्ति
श्रुतकल्याणक	चतु:कल्याणक	लघुकल्याणक
ज्ञानपच्चीसी	बृहदरत्नावलिव्रत	मध्यरत्नावलि
एकावलितपव्रत	द्विकावलिव्रत	लघुद्विकावलिव्रत
वज्रमध्यव्रत	मेरुपंक्तिव्रत	अक्षैनिधिव्रत
निर्दोषसप्तमीव्रत	चन्दनषष्ठीव्रत	सुगन्धदशमीव्रत
तीनचौवीसीव्रत	जिनमुखावलोकन	मुकटसप्तमीव्रत
कर्मचुरव्रत	कर्मक्षयव्रत	श्रुतिपंचमीव्रत
एसोदशव्रत	कांजिकव्रत	अनस्तमीव्रत
गन्धअष्टमीव्रत	नन्दीश्वरपंक्तिव्रत	विमानपंक्तिव्रत
निर्वाणकल्याणकबेला	बृहद्पंचकल्याणक	धनकलश
वीरजयन्तीव्रत	रक्षाबन्धनव्रत	दीपमालीका
मनचिन्ती अष्टमीव्रत	सौभाग्यदशमी	दशमीनिमानी
फलदशमी	दीपदशमी	धूपदशमी
रत्नत्रय	पुष्पांजलि	मनुष्ठिविधान
णमोकार पैंतीसी	नवकारव्रत	चौवीसीतीर्थंकर
नक्षत्रमाला	लब्धिविधान	सप्तकुम्भ
बारहसैचौंतीसी	सर्वतोभद्र	महासर्वतोभद्र
लघुजिनेन्द्रगुणसम्पत्ति	बृहत्सुखसम्पत्ति	लघुसुखसम्पत्ति
मध्यकल्याणक	श्रुतस्कन्ध	श्रुतज्ञान

लघुरत्नावलि	बृहद्मुक्तावलि	मध्यमुक्तावलि
बृहद्कनकावलिव्रत	लघुकनकावलिव्रत	बृहद्मृदंगमध्यव्रत
मेघमालाव्रत	सुखकरणव्रत	समवशरणव्रत
अनन्तचतुर्दशीव्रत	श्रवणद्वादशीव्रत	श्वेतपंचमीव्रत
नवनिधिव्रत	अशोकरोहिणीव्रत	कोकिलापंचमीव्रत
निर्जरापंचमीव्रत	कवलचांद्रायणव्रत	जिनरात्रि
कृष्णपंचमीव्रत	शल्यअष्टमी	लक्षणपंक्ति
परमेष्ठिगुणव्रत	शिवकुमारबेला	तीर्थंकर बेला
कालीचतुर्दशी	मोक्षसप्तमी	रोटतीजव्रत
क्षमावणी	लघुचौबीसी	पंचपौरियाव्रत
चमकदशमी	अहारदशमीव्रत	तन्दोलदशमीव्रत
झाबदशमीव्रत	न्योनदशमी	दण्डदशमी
संकट हरण	नित्यरस	त्रैपनक्रियाव्रत
कर्मचुरव्रत	मध्यसिंहनि:क्रीडित	बृहत्सिंहनि:क्रीडित
दु:खहरणव्रत	जिनपूजापुरन्दर	रूद्रबसन्त
शीलकल्याणक	श्रुतिज्ञानतप	पंचश्रुतज्ञान
लघुमुक्तावलि	एकावलि	लघुमृदंगव्रत
मुरजमध्यव्रत	आकाशपंचमीव्रत	अखेदर्सव्रत
शीलव्रत	सर्वार्थसिद्धिव्रत	रूकमणिव्रत
कर्मनिर्जराव्रत	बारहबिजोराव्रत	एसोनवव्रत
इधरसीव्रत	बारईव्रत	मौनव्रत
लघुपंचकल्याणक	शीलसप्तमी	वीरशासन जयंती
चन्दनषष्ठी	कौमारसप्तमी	पानदशमी
फूलदशमी	बारसुदशमीव्रत	भण्डारदशमी

इनमेंसे ४० व्रतोंकी कथाएं तो प्रगट की गई हैं और अन्य कथाएं मिलेगी तो वे भी प्रकट करनेका प्रयास किया जायेगा।

व्रत कथा – सूची

नं.	नाम कथा	पृष्ठ
	पीठिका	१
१.	रत्नत्रय व्रत कथा	११
२.	दशलक्षण व्रत कथा	१६
३.	षोडशकारण व्रत कथा	२५
४.	श्रुतस्कन्ध व्रत कथा	३७
५.	त्रिलोकतीज व्रत कथा	४१
६.	मुकुटसप्तमी व्रत कथा	४४
७.	अक्षय (फल) दशमी व्रत कथा	४६
८.	श्रवण-द्वादशी व्रत कथा	४८
९.	रोहिणी व्रत कथा	५१
१०.	आकाशपंचमी व्रत कथा	५६
११.	कोकिलापंचमी व्रत कथा	५९
१२.	चन्दनषष्ठी व्रत कथा	६२
१३.	निर्दोषसप्तमी व्रत कथा	६६
१४.	नि:शल्यअष्टमी व्रत कथा	७०
१५.	सुगन्धदशमी व्रत कथा	७४
१६.	जिनरात्री व्रत कथा	७८
१७.	जिनगुणसम्पत्ति व्रत कथा	८५
१८.	मेघमाला व्रत कथा	९०
१९.	श्री लब्धिविधान व्रत कथा	९५
२०.	मौन एकादशी व्रत कथा	९९

नं.	नाम कथा	पृष्ठ
२१.	गरुडपंचमी व्रत कथा	१०३
२२.	द्वादशी व्रत कथा	१०८
२३.	अनन्त व्रत कथा	१११
२४.	अष्टान्हिका (नन्दीश्वर) व्रत कथा	११५
२५.	रविवार व्रत (आदित्यवार) व्रत कथा	१२१
२६.	पुष्पांजलि व्रत कथा	१२५
२७.	बारहसौ चौंतीस व्रत कथा	१३१
२८.	औषधिदान व्रत कथा	१३३
२९.	परधन लोभकी कथा	१३५
३०.	कवलचांद्रायण व्रत कथा	१३७
३१.	ज्येष्ठ जिनवर व्रत कथा	१३९
३२.	णमोकार पैंतीसी व्रत	१४२
३३.	बृहत् सिंहनिष्क्रीडित व्रत	१४३
३४.	लघु सिंहनिष्क्रीडित व्रत	१४३
३५.	महासर्वतोभद्र व्रत	१४३
३६.	सर्वतोभद्र व्रत	१४३
३७.	मुक्तावलि व्रत	१४३
३८.	कर्मनिर्जरा व्रत	१४४
३९.	शिवकुमार बेला व्रत	१४४
४०.	अक्षयतृतीया व्रत कथा	१४५

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

श्री जैनव्रत-कथासंग्रह

पीठिका। ❖

प्रणामि देव अर्हन्तको, गुरु निर्ग्रन्थ मनाय।
नमि जिनवाणी व्रत कथा, कहूँ स्वपर सुखदाय॥

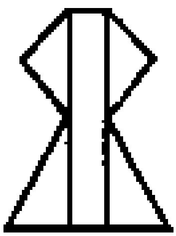

अनन्तानन्त आकाश (लोकाकाश) के ठीक मध्यभागमें ३४३ धन राजू प्रमाण क्षेत्रफलवाला अनादि निधन यह पुरुषाकार लोकाकाश है जो कि तीन प्रकारके वातवलयों अर्थात् वायु (घनोदधि धन और तनुवातवलय) से घिरा हुआ अपने ही आधार आप स्थित हैं।

यह लोकाकाश उर्ध्व, मध्य और अधोलोक, इस प्रकार तीन भागोंमें बंटा हुआ हैं। इस (लोकाकाश) के बीचोंबीच १४ राजू ऊंची और १ राजू चौडी लम्बी चौकोर स्तंभवत एक त्रस नाडी हैं। अर्थात् इसके बाहर त्रस जीव (दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पांच इन्द्रिय जीव) नहीं रहते हैं। परंतु एकेन्द्रिय जीव स्थावर निगोद तो समस्त लोकाकाशमें त्रस नाडी और उससे बाहर भी वातवलयों पर्यन्त रहते हैं। इस त्रस नाडीके उर्ध्व भागमें सबसे उपर तनुवातवलयके अंतमें समस्त 'कार्योंसे रहित अनन्तदर्शन, ज्ञान, सुख और वीर्यादि' अनन्त गुणोंके धारी अपनी२ अवगाहनाको लिये हुये अनंत सिद्ध भगवान विराजमान हैं। उससे नीचे अहमिन्द्रोंका निवास है, और फिर सोलह स्वर्गोंके

❖ यह पीठिका आदिसे अन्त तक प्रत्येक कथाके प्रारंभमें पढना चाहिये। और इसके पढनेके पश्चात् ही कथाका प्रारंभ करना चाहिये।

****

देवोंका निवास है। स्वर्गोंके नीचे मध्यलोकके ऊर्ध्व भागमें सूर्य चन्द्रमादि ज्योतिषी देवोंका निवास हैं (इन्हींके चलने अर्थात् नित्य सुदर्शन आदि मेरुओंकी प्रदक्षिणा देनेसे दिन, रात और ऋतुओंका भेद अर्थात् कालका विभाग होता है।) फिर नीचेके भागमें पृथ्वी पर मनुष्य त्रियंच पशु और व्यन्तर जातिके देवोंका निवास है। मध्यलोकसे नीचे अधोलोक (पाताल लोक) हैं। इस पाताल लोकके ऊपरी कुछ भागमें व्यन्तर और भवनवासी देव रहते हैं और शेष भागमें नारकी जीवोंका निवास है।

ऊर्ध्व लोकवासी देव इन्द्रादि तथा मध्य व पातालवासी (चारों प्रकारके) इन्द्रादि देव तो अपने पूर्व संचित पुण्यके उदयजनित फलको प्राप्त हुए इन्द्रिय विषयोंमें निमग्न रहते हैं, अथवा अपनेसे बडे ऋद्धिधारी इन्द्रादि देवोंकी विभूति व ऐश्वर्यको देखकर सहन न कर सकनेके कारण आर्तध्यान (मानसिक दु:खोंमें) निमग्न रहते हैं, और इस प्रकार वे अपनी आयु पूर्ण कर वहांसे चयकर मनुष्य व त्रियंच गतिमें अपने अपने कर्मानुसार उत्पन्न होते हैं।

इसी प्रकार पातालवासी नारकी जीव भी निरंतर पापके उदयसे परस्पर मारण, ताडन, छेदन, वध बन्धनादि नाना प्रकारके दु:खोंको भोगते हुए अत्यन्त आर्त व रौद्रध्यानसे आयु पूर्ण करते मरते हैं और स्व स्व कर्मानुसार मनुष्य व त्रियंच गतिको प्राप्त करते हैं।

तात्पर्य–ये दोनों (देव तथा नरक) गतियां ऐसी हैं कि इनमेंसे विना आयु पूर्ण हुए न तो निकल सकते हैं और न वहांसे सीधे मोक्ष ही प्राप्त कर सकते है, क्योंकि इन दोनों

गतिके जीवोंका शरीर वैक्रियक है, जो कि अतिशय पुण्य व पापके कारण उनको उसका फल सुख किंवा दुःख भोगनेके लिए ही प्राप्त हुआ है। इसलिए इनसे इन पर्यायोमें चारित्र धारण नहीं हो सकता, और चारित्र बिना मोक्ष नहीं होता है। इसलिये इन गतियोंसे यहांसे निकलकर मनुष्य या त्रिर्यंच गतियोंमें आना ही पडता है।

त्रिर्यंच गतिमें भी एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौ इन्द्रिय और असैनी पंचेन्द्रिय जीवोंको तो मनके अभावसे सम्यग्दर्शन ही नहीं हो सकता है और बिना सम्यग्दर्शनके सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र भी नहीं होता है। तथा बिना सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्रके मोक्ष नहीं होता है। रहे सैनी पंचेन्द्रिय जीव, सो इनको सम्यक्त्व हो जाने पर अप्रत्याख्यानावरण कषायके क्षयोपशम होनेसे एकदेश व्रत हो सकता है, परंतु पूर्ण व्रत नहीं, तब मनुष्य गति ही एक ऐसी गति ठहरी, कि जिसमें यह जीव सम्यक्त्व सहित पूर्ण चारित्रको धारण करके अविनाशी मोक्ष-सुखको प्राप्त कर सकता है। मनुष्योंका निवास मध्यलोक ही में है, इसलिये मनुष्य क्षेत्रका कुछ संक्षिप्त परिचय देकर कथाओंका प्रारंभ करेंगे।

लोकाकाशके मध्यमें १ राजू चौडा और १ राजू लंबा मध्यलोक हैं, जिसमें त्रस जीवोंका निवास १ राजू लम्बे और १ राजू चौडे क्षेत्र हीं में है—मध्यलोकका आकार□□□○□□□ इस राजू मध्यलोकके क्षेत्रमें जम्बूद्वीप और लवण समुद्र आदि असंख्यात द्वीप और समुद्रके चूडीके आकारवत् एक दूसरेको घेरे हुए द्वीपसे दूना समुद्र और समुद्र से दूना द्वीप इस प्रकार दूने २ विस्तार वाले हैं।

****

इन असंख्यात द्वीप समुद्रोंके मध्यमें थालीके आकार गोल एक लाख महायोजन* व्यासवाला जम्बूद्वीप है। इसके आस पास लवण समुद्र, फिर घातकी खण्डद्वीप, फिर कालोदधि समुद्र और फिर पुष्कर द्वीपके बीचोंबीच एक गोल भीतके आकारवाले पर्वतसे (जिसे मानुषोत्तर पर्वत कहते है) दो भागोंमें बटा हुआ है। इस पर्वतके उस ओर मनुष्य नहीं जा सकता है। इस प्रकार जम्बू, घातकी और पुष्कर आधा (ढाईद्वीप) और लवण तथा कालोदधि ये दो समुद्र मिलकर ४५ लाख महायोजन* व्यासवाला क्षेत्र मनुष्यलोक कहलाता है और इतने क्षेत्रसे मनुष्य रत्नत्रयको धारण करके मोक्ष प्राप्त कर सकते है।

जीव कर्मसे मुक्त होने पर अपनी स्वाभाविक गतिके अनुसार ऊर्ध्वगमन करते है इसलिए जितने क्षेत्रसे जीव मोक्ष प्राप्त करके ऊर्ध्वगमन करके लोक–शिखरके अन्तमें जाकर धर्म द्रव्यका आगे अभाव होनेके कारण अधर्म द्रव्यकी सहायतासे ठहर जाते हैं उतने (लोकके अन्तवाले) क्षेत्रको "सिद्धक्षेत्र" कहते हैं। इस प्रकार सिद्धक्षेत्र भी पैंतालीस लाख योजनका ही ठहरा।

इस ढाईद्वीपमें पांच मेरु और तीन संबंधी बीस विदेह तथा पांच भरत और पांच ऐरावत क्षेत्र हैं। इन क्षेत्रोंमेंसे जीव रत्नत्रयसे कर्म नाश कर सकते है। इसके सिवाय और कुछ क्षेत्र ऐसे हैं, जहां भोगभूमि (युगलियों) की रीति प्रचलित है। अर्थात् वहांके जीव मनुष्यादि, अपनी सम्पूर्ण आयु विषयभोगों ही में बिताया करते है। ये भोगभूमियां उत्तम, मध्यम और जघन्य ३ प्रकारकी होती हैं, और इनकी क्रमसे तीन, दो और एक पल्यकी बडी

* महायोजन=चार हजार मीलका होता है।

बडी आयु होती हैं। आहार बहुत कम होता हैं। ये सब समान (राजा प्रजाके भेद रहित) होते हैं। उनको सब प्रकारकी सामग्री कल्पवृक्षो द्वारा प्राप्त होती हैं, इसलिये व्यापार धंधा आदिकी झंझटसे बचे रहते हैं। इस प्रकार ये वहांके जीव आयु पूर्ण कर मंद कषायोंके कारण देवगतिको प्राप्त होते हैं।

भरत और ऐरावत क्षेत्रोंके आर्य खण्डोंमें उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी (कल्प काल) के छः काल (सुखमा सुखमा, सुखमा, सुखमा दुःखमा, दुःखमा सुखमा, दुःखमा और दुःखमा दुःखमा) की प्रवृत्ति होती है, सो इनमें भी प्रथमके तीन कालोंमें तो भोगभूमि की ही रीति प्रचलित रहती हैं। शेष तीन काल कर्मभूमिके होते है, इसलिये इन शेष कालोंमें चौथा (दुःखमा सुखमा) काल है, जिसमें त्रेसठ शलाका आदि महा पुरुष उत्पन्न होते हैं।

पांचवे और छठवें कालमें क्रमसे आयु काय, बल, वीर्य घट जाता है और इन कालोंमें कोई भी जीव मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता है। विदेह क्षेत्रोंमें ऐसी कालचक्रकी फिरन नहीं होती है। वहां तो सदैव चौथा काल रहता है और कमसे कम २० तथा अधिकसे अधिक १६० श्री तीर्थंकर भगवान तथा अनेकों सामान्य केवली और मुनि श्रावक आदि विद्यमान रहते हैं और इसलिये सदैव ही मोक्षमार्गका उपदेश व साधन रहनेसे जीव मोक्ष प्राप्त करते रहते हैं। जिन क्षेत्रोंमें रहकर जीव आत्म धर्मको प्राप्त होकर मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं अथवा जिनमें मनुष्य असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प व विद्यादि द्वारा आजीविका करके जीवन निर्वाह करते हैं, वे कर्मभूमिज

****

इस मनुष्य क्षेत्रके मध्य जो जम्बूद्वीप है, उसके बीचोंबीच सुदर्शन मेरु नामका स्तम्भाकार एक लाख योजन ऊंचा पर्वत है। इस पर्वत पर सोलह अकृत्रिम जिन मंदिर हैं। यह वही पर्वत है कि जिसपर भगवानका जन्माभिषेक इन्द्रादि देवों द्वारा किया जाता है। इसके सिवाय ६ पर्वत और भी दण्डाकार (भीतके समान) इस द्वीपमें हैं, जिनके कारण यह द्वीप सात क्षेत्रोंमें बंट गया है। यह पर्वत सुदर्शनमेरुके उत्तर और दक्षिण की दिशामें आडे पूर्व पश्चिम लक समुद्रसे मिले हुए हैं। इन सात क्षेत्रोंमेंसे दक्षिणकी ओरसे सबके अन्तके क्षेत्रको भरतक्षेत्र कहते हैं।

इस भरतक्षेत्रमें भी बीचमें विजयार्द्ध पर्वत पड़ जानेसे यह दो भागोंमें बंट जाता है। और उत्तरकी ओर जो हिमवत् पर्वत पर पद्मद्रह है। उससे गंगा और सिन्धु दो महा नदियां निकलकर विजयार्द्ध पर्वतको भेदती हुई पूर्व और पश्चिमसे बहती हुई दक्षिण समुद्रमें मिलती हैं। इससे भरत क्षेत्रके छः खण्ड हो जाते हैं, इन छः खण्डोंमेंसे सबसे दक्षिणके बीच वाला खण्ड आर्य खण्ड कहलाता है और शेष ५ म्लेच्छ खण्ड कहलाते हैं। इसी आर्य खण्डमें तीर्थंकर तीर्थंकरादि महापुरुष उत्पन्न होते हैं। यही आर्यखण्ड कहाता है।

इस आर्यखण्डमें मगध नामका एक प्रदेश है, जिसे आजकल बिहार प्रांत कहते हैं।

इसी मगधदेशमें राजगृही नामकी एक बहुत मनोहर नगरी है और इन नगरीके समीप विपुलाचल, उदयाचल आदि पंच पहाडियां हैं तथा पहाड़ियोंके नीचे कितनेक उष्ण जलके कुण्ड बने हैं। इन पहाडियों व झरनोंके कारण नगरीकी शोभा विशेष बढ़ गई है। यद्यपि कालदोषसे अब यह नगर उजाड़ हो रहा

है परंतु उसके आसपासके चिह्न देखनेसे प्रकट होता है कि किसी समय यह नगर अवश्य ही बहुत उन्नत होगा।

आजसे ढाई हजार वर्ष पहिले अंतिम चौवीसवें तीर्थंकर श्री वर्द्धमान स्वामीके समयमें इस नगरमें महामण्डलेश्वर महाराजा श्रेणिक राज्य करते थे। वह राजा बडा प्रतापी, न्यायी और प्रजापालक था। वह अपनी कुमार अवस्थामें पूर्वोपार्जित कर्मके उदयसे अपने पिता द्वारा देशमें निकाला गया था और भ्रमण करते हुए एक बौद्ध साधुके उपदेशसे बौद्धमतको स्वीकार कर चुका था। वह बहुत कालतक बौद्ध मतावलम्बी रहा।

जब यह श्रेणिककुमार निज बाहु तथा बुद्धिबलसे विदेशोंमें भ्रमण करके बहुत विभूति व ऐश्वर्य सहित स्वदेशको लौटा तो वहांके निवासियोंने इन्हें अपना राजा बनाना स्वीकार किया। इस समय इनके पिता उपश्रेणिक राजाका स्वर्गवास हो चुका था, और इनके एक भाई चिलात नामके अपने पिता द्वारा प्रदत्त राज्य करते थे। इनके राज्य-कार्यमें अनभिज्ञ होने तथा, प्रजा पर अत्याचार करनेके कारण प्रजा अप्रसन्न हो गई थी, इसीसे सब प्रजाने मिलकर राज्यच्युत कर दिया था। ठीक है, राजा प्रजापर अत्याचार नहीं कर सकता। वह एक प्रकारसे प्रजाका रक्षक (नौकर) ही होता है, क्योंकि प्रजाके द्वारा द्रव्य मिलता है, अर्थात् उसकी जीविका प्रजाके आश्रित हैं, इसलिये वह प्रजापर नीतिपूर्वक शासन कर सकता है न कि स्वेच्छाचारी होकर अन्याय कर सकता है।

उसका कर्तव्य है कि वह प्रजाकी भलाई के लिये सतत पयत्न करे, तथा उसकी यथासाध्य रक्षा व उन्नतिका उपाय करता रहे, तभी वह राजा कहलानेके योग्य हो सकता हैं।

****

और प्रजा भी तभी उसकी आज्ञाकारिणी हो सकती है। राजा और प्रजाका संबंध पिता और पुत्रके समान होता है, इसलिये जब जब राजाकी ओरसे अन्याय व अत्याचार बढ जाते हैं तब तब प्रजा अपना नया राजा चुन लिया करती है, और उस अत्याचारी अन्यायी राजाको राज्यच्युत करके निकाल देती है। इसी नियमानुसार राजगृहीकी प्रजाने अन्यायी चिलात नामक राजाको निकालकर महाराज श्रेणिकको अपना राजा बनाया और इस प्रकार श्रेणिक महाराज नीतिपूर्वक पुत्रवत् प्रजाका पालन करने लगे।

पश्चात् इनका एक और ब्याह राजा चेटककी कन्या चेलनाकुमारीसे हुआ। चेलनारानी जैनधर्मानुयायी थी और राजा श्रेणिक बौद्धमतानुयायी थे। इस प्रकार यह केरबेर (केला और बेरी) का साथ बन गया था, इसलिये इनमें निरन्तर धार्मिक वादविवाद हुआ करता था। दोनों पक्षवाले अपने अपने पक्षके मण्डन तथा परपक्षके खण्डनार्थ प्रबल प्रबल उक्तियां दिया करते थे। परंतु ''सत्यमेव जयते सर्वदा'' की उक्तिके अनुसार अंतमें रानी चेलना ही की विजय हुई। अर्थात् राजा श्रेणिकने हार मानकर जैनधर्म स्वीकृत कर लिया और उसकी श्रद्धा जैनधर्ममें अत्यंत दृढ हो गई। इतना ही नहीं किन्तु वह जैनधर्म, देव या गुरुओंका परम भक्त बन गया और निरन्तर जैन धर्मकी उन्नतिमें सतत् प्रयत्न करने लगा।

एक दिन इसी राजगृही नगरके समीप उद्यान (वन) में विपुलाचल पर्वतपर श्रीमद् देवाधिदेव परम भगवान श्री १००८ वर्द्धमानस्वामीका समवशरण आया, जिसके अतिशयसे वहांके वन उपवनोंमें छहों ऋतुओंके फूल फल एक ही साथ फूल

****

गये तथा नदी सरोवर आदि जलाशय जलपूर्ण हो गये। वनचर, नभचर व जलचर आदि जीव सानन्द अपने अपने स्थानोंमें स्वतंत्र निर्भय होकर विचरने और क्रीडा करने लगे, दूर दूर तक रोग मरी व अकाल आदिका नाम भी न रहा, इत्यादि अनेकों अतिशय होने लगे। तब वनमाली उन फूल और फलोंकी डाली लेकर यह आनन्ददायक समाचार राजाके पास सुनानेके लिये गया और विनययुक्त भेट करके सब समाचार कह सुनाये।

राजा श्रेणिक यह सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुआ और अपने सिंहासन से तुरंत ही उतर कर विपुलाचलकी ओर मुंह करके परोक्ष नमस्कार किया। पश्चात् वनपालको यथेच्छ पारितोषिक दिया और यह शुभ सम्वाद सब नगरमें फैला दिया। अर्थात् यह घोषणा करा दी कि महावीर भगवानका समवशरण विपुलाचल पर्वत पर आया है, इसलिये सब नरनारी वन्दनाके लिये चले और राजा स्वयं भी अपनी विभूति सहित हर्षित मन होकर वन्दना के लिये गया। जाते जाते मानस्तम्भ पर दृष्टि पडते ही राजा हाथीसे उतर कर पांव प्यादे चल समवशरणमें रानी आदि स्वजन पुरजनों सहित पहुंचा और सब ओर यथायोग्य वन्दना स्तुति करता हुआ गन्धकुटिके निकट उपस्थित हुआ, और भक्तिसे नम्रीभूत स्तुति करके मनुष्योंकी सभामें जाकर बैठ गया। और सब लोग भी यथायोग्य स्थानोंमें बैठ गये।

तब मुमुक्षु (मोक्षाभिलाषी) जीवोंके कल्याणार्थ श्री जिनेन्द्रदेवके द्वारा मेघोंकी गर्जनाके समान ॐकाररूप अनक्षरी वाणी (दिव्यध्वनि) हुई। यद्यपि इस वाणीको सब उपस्थित समाज अपनी अपनी भाषामें यथासंभव निज ज्ञानावरण कर्मके

क्षयोपशमके अनुसार समझ लेते हैं, अर्थात् गणधर (गणेश जोकि मुनियोंकी सभामें श्रेष्ठ चार ज्ञानके धारी होते हैं) उक्त वाणीको द्वादशांगरूप कथनकर भव्य जीवोंको भेदभाव रहित समझाते है सो उस समय श्री महावीरस्वामीके समवशरणमें उपस्थित गणनायक श्री गौतमस्वामीने प्रभुकी वाणीको सुनकर सभाजनोंको सात तत्त्व, नव पदार्थ, पंचास्तिकाय इत्यादिका स्वरूप समझाकर रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप मोक्षमार्ग) का कथन किया और सागार (गृहस्थ) तथा अनगार (साधु) धर्मका उपदेश दिया, जिसे सुनकर निकट भव्य (जिनकी संसारस्थिति थोडी रह गई है अर्थात् मोक्ष होना निकट रह गया है) जीवोंने यथाशक्ति मुनि अथवा श्रावकके व्रत धारण किये। तथा जो शक्तिहीन जीव थे और जिनको दर्शनमोहका उपशम व क्षय हुआ था सो उन्होंने सम्यक्त्व ही ग्रहण किया। इस प्रकार जब वे भगवान धर्मका स्वरूप कथन कर चुके, तब उस सभामें उपस्थित परम श्रद्धालु भक्त श्रेणिकने विनययुक्त नम्रीभूत हो श्री गौतमस्वामी गणधरसे प्रश्न किया कि "हे प्रभु!* व्रतकी विधि किस प्रकार है और इस व्रतको किसने पालन किया तथा क्या फल पाया?" सो कृपाकर कहो ताकि हीन शक्ति धारी जीव भी यथाशक्ति अपना कल्याण कर सके और जिनधर्मकी प्रभावना होवे।

यह सुनकर श्री गौतमस्वामी बोले–राजा! तुम्हारा यह प्रश्न समयोचित और उत्तम है, इसलिये ध्यान लगाकर सुनो। इस व्रतकी कथा व विधि इस प्रकार है – (इति पीठिका)

* यहां शून्य स्थानमें जो कथा बांचना होवे उसीका नाम उच्चारण करना चाहिये।

****

१ श्री रत्नत्रय व्रत कथा

दाता सम्यक् रत्नत्रय, गुरुशास्त्र जिनराय।
कर प्रणाम बरणूं कथा, रत्नत्रय सुखदाय॥१॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान व्रत, इन बिन मुक्ति न होय।
तासों प्रथम हि रत्नत्रय, कथा सुनों भविलोय॥२॥

जम्बूद्वीपके विदेह क्षेत्रमें एक कक्ष नामका एक देश और वीतशोकपूर नामका एक नगर है। वहां एक अत्यन्त पुण्यवान वैश्रवण नामका राजा रहता था, जो कि पुत्रवत् अपनी प्रजाका पालन करता था।

एक दिन वह (वैश्रवण) राजा वसंत ऋतुमें क्रीडाके निमित्त उद्यानमें यत्र तत्र सानंद विचर रहा था कि इतने ही में उसकी दृष्टि एक शिलापर विराजमान ध्यानस्थ श्री मुनिराज पर पडी। सो तुरंत ही हर्षित होकर वह राजा श्री मुनिराजके समीप आया और विनययुक्त नमस्कार करके बैठ गया। श्री मुनिराज जब ध्यान कर चुके तो उन्होंने धर्मवृद्धि कहकर आशीर्वाद दिया और इस प्रकार धर्मोपदेश देने लगे–

यह जीव अनादिकालसे मोहकर्मवश मिथ्या श्रद्धान, ज्ञान और आचरण करता हुआ पुनः पुनः कर्मबन्ध करता और संसारमें जन्म मरणादि अनेक प्रकार दुःखोंको भोगता है इसलिये जब तक इस रत्नत्रय (जो कि आत्माका निज स्वभाव है) की प्राप्ति नहीं हो जाती तब तक यह (जीव) दुःखोंसे छुटकर निराकुलता स्वरूप सच्चे सुख व शांतिकी प्राप्ति नहीं हो सकती, जो कि वास्तवमें इस जीवका हितकारी

****

है। इसलिये भगवानने सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको मोक्षमार्ग कहा है और सच्चा सुख मोक्ष अवस्थाहीमें मिलता है, इसलिये मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति करना मुमुक्षु जीवोंका परम कर्त्तव्य है।

(१) पुद्गलादि परद्रव्यंसे भिन्न निज स्वरूपका श्रद्धान (स्वानुभव) तथा उसके कारणस्वरूप सप्त तत्त्वों और सत्यार्थ देव गुरु व शास्त्रका श्रद्धान होना सो सम्यग्दर्शन हैं। यह सम्यग्दर्शन अष्ट अंग सहित और २५ मल दोष रहित धारण करना चाहिये अर्थात् जिन भगवानके कहे हुए वचनोंमें शंका नहीं करना, संसारके विषयोंकी अभिलाषा न करना, मुनि आदि साधर्मीयोंके मलीन शरीरको देखकर ग्लानि न करना, धर्मगुरुके सत्यार्थ तत्वोंकी यथार्थ पहिचान करना, अर्थात् कुगुरु (रागद्वेषी भेषी परिग्रही साधु गृहस्थ) कुदेव (रागीद्वेषी भयंकर देव कुधर्म हिंसापोषक क्रियाओं) की प्रशंसा भी न करना, धर्मपर लगते हुए मिथ्या आक्षेपोंको दूर करना और अपनी बडाई व परनिन्दाका त्याग करना, सम्यक् श्रद्धान और चारित्रसे डिगते हुए प्राणियोंको धर्मोपदेश तथा द्रव्यादि देकर किसी प्रकार स्थिर करना और धर्म और धर्मात्माओमें निष्कपट भाव से प्रेम करना और सर्वोपरि सर्व हितकारी श्री दिगम्बर जैनाचार्यो द्वारा बताये हुए श्री पवित्र जिनधर्मका यथार्थ प्रभाव सर्वोपरि प्रकट कर देना ये ही अष्ट अंग है।

इनसे विपरीत शंकादि आठ दोष, १. जाति, २. कुल, ३. बल, ४. एश्वर्य, ५. धन, ६. रूप, ७. विद्या और ८. तप इन आठके आश्रित हो गर्व करना सो आठ मद, कुगुरु, कुदेव, कुधर्म और कुगुरु सेवक, सुदेव आधारक तथा कुधर्म

धारक, ये छ: अनायतन और १ लोकमूढता (लौकिक चमत्कारोंके कारण लोभमें फंसकर रागी द्वेषी देवोंका पूजना) और तीन पाखण्डी मूढता (कुलीन आडम्बरधारी गुरुओंकी सेवा करना) इस प्रकार ये पच्चीस सम्यक्त्व के दूषण हैं। इससे सम्यक्त्वका एकदेश घात होता है इसलिये इन्हें त्याग देना चाहिये।

(२) पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको संशय, विपर्यय व अनध्यवसाय आदि दोषोंसे रहित जानना सो सम्यग्ज्ञान है।

(३) आत्माकी निज परिणति (जो वीतराग रूप है) में ही रमण करता, अर्थात् रागद्वेषादि विभाव भावों क्रोधादि कषायोंसे आत्माको अलग करने व बचानेके लिये व्रत, संयम तपादिक करना सो सम्यक्चारित्र है। इस प्रकार इस रत्नत्रय रूप मोक्ष मार्गको समझकर और उसे स्वशक्ति अनुसार धारण करके जो कोई भव्यजीव बाह्य तपाचरण धारण करता है वही सच्चे (मोक्ष) सुखको प्राप्त होता है।

इस प्रकार रत्नत्रयका स्वरूप कहकर अब बाह्य व्रत पालनेकी विधि कहते है --

भादो, माघ और चैत्र मासके शुक्ल पक्षमें, तेरस चौदस और पुनम इस प्रकार तीन दिन यह व्रत किया जाता है और १२ को व्रतकी धारणा तथा प्रतिपदाको पारणा किया जाता हैं, अर्थात् १२ को श्री जिन भगवानकी पूजनाभिषेक करके एकाशन (एकभुक्त) करे और फिर मध्याह्नकालकी सामायिक करके उसी समयसे चारों प्रकारके (खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय) आहार तथा विकथाओं और सब प्रकारके

****

आरम्भोका त्याग करें। इस प्रकार तेरस, चौदस और पुनम तीन प्रोषध दिन (प्रोषह उपवास) करे और प्रतिपदा (पडवा) को श्री जिनदेवके अभिषेक पूजनके अनन्तर सामायिक करके तथा किसी अतिथि या दु:खीत भूखितको भोजन कराकर भोजन करे, इस दिन भी एकभूक्त ही करना चाहिये।

इन व्रतोंके पांचों दिनोंमें समस्त सावद्य (पाप बढ़ानेवाले) आरम्भ और विशेष परिग्रहका त्याग करके अपना समय सामाजिक, पूजा स्वाध्यायादि धर्मध्यानमें बितावे। इस प्रकार यह व्रत १२ वर्ष तक करके पश्चात् उद्यापन करे और यदि उद्यापनकी शक्ति न होवे तो दूना व्रत करे, यह उत्कृष्ट व्रतकी विधि है।

यदि इतनी भी शक्ति न होवे तो बेला करे या कांजी आहार करे तथा आठ वर्ष करके उद्यापन करे यह मध्यम विधि है। और जो इतनी शक्ति न होवे तो एकासना करके करे और तीन ही वर्ष या पांच वर्ष तक करके उद्यापन करे, यह जघन्य विधि हैं। सो स्वशक्ति अनुसार व्रत धारण कर पालन करे। नित्य प्रतिदिनमें त्रिकाल सामायिक तथा रत्नत्रय पूजन विधान करे और तीनबार इस व्रतका जाप्य जपे अर्थात् ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो नम:, इस मंत्रकी १०८ बार जाप जपे, तब एक जाप्य होती है।

इस प्रकार व्रत पूर्ण होनेपर उद्यापन करे। अर्थात् श्री जिनमंदिरमें जाकर महोत्सव करे। छत्र, चमर, झारी, कलश, दर्पण, पंखा, ध्वजा और ठमनी आदि मंगल द्रव्य चढावे, चन्दोवा बंधावे और कमसे कम तीन शास्त्र मंदिरमें पधरावें, प्रतिष्ठा करे, उद्यापनके हर्षमें विद्यादान करे, पाठशाला,

छात्रावास, अनाथालय, पुस्तकालय, आदि संस्थाएं ध्रौव्यरूपसे स्थापित करे और निरन्तर रत्नत्रयकी भावना भाता रहे।

इस प्रकार श्री मुनिराजने राजा वैश्रवणको उपदेश दिया सो राजाने सुनकर श्रद्धापूर्वक इस व्रतको यथा विधि पालन कर किया पूर्ण अवधि होने पर उत्साह सहित उद्यापन किया।

पश्चात् एक दिन यह राजा एक बहुत बडे बडके वृक्षको जडसे उखडा हुआ देखकर वैराग्यको प्राप्त हुआ और दीक्षा लेकर अन्त समय समाधिमरण कर अपराजित नाम विमानमें अहमिंद हुआ, और फिर यहांसे चयकर मिथिलापुरीमें महाराजा कुम्भरायके यहां, सुप्रभावती रानीके गर्भसे मल्लिनाथ तीर्थंकर हुये सो पंचकल्याणकको प्राप्त होकर अनेक भव्य जीवोंको मोक्षमार्गमें लगाकर आप परम धाम (मोक्ष) को प्राप्त हुये।

इस प्रकार वैश्रवण राजाने व्रत पालनकर स्वर्गके मनुष्योंके सुखको प्राप्त होकर मोक्षपद प्राप्त किया, और सदाके लिये जन्म मरणादि दु:खोंसे छुटकर अविनाशी स्वाधीन सुखोंको प्राप्त हुये। इसलिये जो नरनारी मन, वचन, कायसे इन व्रतकी भावना भाते है। अर्थात् रत्नत्रयको धारण करते है। वे भी राजा वैश्रवणके समान स्वर्गादि मोक्ष सुखको प्राप्त होते हैं।

महाराज वैश्रवणने, रत्नत्रय व्रत पाल।
लही मोक्षलक्ष्मी तिनहिं, दोय नमैं त्रैकाल॥

❑

****

(२) श्री दशलक्षण व्रत कथा

१ २ ३ ४ ५ ६ ७
उत्तमक्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, ज्ञान।
८ ९ १०
त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य, मिल ये दशलक्षण धर्म बखान॥

ये स्वाभाविक आतमके गुण, जे नर धरैं सुधी गुणवान।
तिन पद वन्द्य कथा दशलक्षण, व्रतकी कहूँ सूनो मन आन॥

घातकी खण्ड द्वीपके पूर्वविदेह क्षेत्रमें विशाल नामका एक नगर है। वहांका प्रियंकरा नामक राजा अत्यंत नितिनिपुण और प्रजावत्सल था। रानीका नाम प्रियंकर था, और इसके गर्भसे उत्पन्न हुई कन्याका नाम मृगांकलेखा था।

इसी राजाके मंत्रीका नाम मतिशेखर था। इस मंत्रीके उसकी शशिप्रभा स्त्रीके गर्भसे कमलसेना नामकी कन्या थी।

इसी नगरके गुणशेखर नामक एक सेठके यहां उसकी शीलप्रभा नामकी सेठानीसे एक कन्या मदनवेगा नामकी हुयी थी। और लक्षभट नामक ब्राह्मणके घर चन्द्रभागा भार्यासे रोहिणी नामकी कन्या हुई थी।

ये चारों (मृगांकलेखा, कमलसेना, मदनवेगा और रोहिणी) कन्याएं अत्यंत रूपवान, गुणवान तथा बुद्धिमान थीं। वे सदैव धर्माचरणमें सावधान रहती थी। एक समय वसंतऋतुमें ये चारों कन्याएं अपने अपने माता पिताकी आज्ञा लेकर वनक्रीडाके लिये निकली, सो भ्रमण करती करती कुछ दूर निकल गयी। जबकि ये वनकी स्वाभाविक शोभाको देखकर आल्हादित हो रही थीं कि उसी समय उनकी दृष्टि उस वनमें विराजमान श्री महामुनिराज

पर पड़ी और वे विनयपूर्वक उनको नमस्कार करके वहां बैठ गईं। और धर्मोपदेश सुनने लगी। पश्चात् मुनि तथा श्रावकोंका द्विविध प्रकार उपदेश सुनकर वे चारों कन्याएं हाथ जोडकर पूछने लगी – हे नाथ! यह तो हमने सुना, अब दया करके हमको ऐसा मार्ग बताइये कि जिससे इस पराधीन स्त्री पर्याय तथा जन्म मरणादिक दु:खोंसे छुटकारा मिले। तब श्री गुरु बोले–बालिकाओ! सुनो –

यह जीव अनादिकालसे मोहभावको प्राप्त हुआ विपरीत आचरण करके ज्ञानावरणादि अष्टकर्मोको बांधता है और फिर पराधीन हुवा संसारमें नाना प्रकारके दु:ख भोगता है। सुख यथार्थमें कहीं बाहरसे नहीं आता है न कोई भिन्न पदार्थ ही हैं, किंतु वह (सुख) अपने निकट ही आत्मामें, अपने ही आत्माका स्वभाव हैं, सो जब तीव्र उदय होता हैं, उस समय यह जीव अपने उत्तमक्षमादि गुणोंको (जो यथार्थमें सुख–शांति स्वरूप ही है) भूलकर इनसे विपरीत क्रोधादि भावोंको प्राप्त होता है और इस प्रकार स्वपरकी हिंसा करता है। सो कदाचित यह अपने स्वरूपका विचार करके अपने चित्तको उत्तमक्षमादि गुणोंसे रंजित करे, तो नि:संदेह इस भव और परभवमें सुख भोगकर परमपद (मोक्ष) को प्राप्त कर सकता है। स्त्री पर्यायसे छूटना तो कठिन ही क्या हैं? इसलिये पुत्रियों! तुम मन, वचन, कायसे इस उत्तम दशलक्षण रूप धर्मको धारण करके यथाशक्ति व्रत पालों, तो नि:संदेह मनवांछित (उत्तम) फल पाओगी।

भगवाननें उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागा–किंचन्य ब्रह्मचर्याणि धर्म: अर्थात् उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य, इस

****

प्रकार ये धर्मके दश लक्षण बताये हैं। ये वास्तवमें आत्माके ही निजभाव हैं जो क्रोधादि कषायोंसे ढक रहे हैं।

उत्तम क्षमा, क्रोधके उपशम या क्षय होनेसे प्रगट होती है। इसी प्रकार उत्तम मार्दव, मानके उपशम, क्षयोपशम, व क्षयसे होता है। उत्तम आर्जव, मायाके नाश होनेसे होता है। सत्य, मिथ्यात्व (मोह) के नाशसे होता हैं। शौच, लोभके नाशसे होता है। संयम, विषयानुराग कम या नाश होनेसे होता है। तप, इच्छाओंको रोकने (मन वश करने) से होता है। त्याग, ममत्व (राग) भाव कम या नाश करनेसे होता है। आकिंचन्य, निस्पृहतासे उत्पन्न होता है और ब्रह्मचर्य काम विकार तथा उनके कारणोंको छोडनेसे उत्पन्न होता है। इस प्रकार ये दशों धर्म अपने प्रति घातक दोषोंके क्षय होनेसे प्रगट हो जाते हैं।

(१) क्षमावान् प्राणी कदापि किसी जीवसे वैर विरोध नहीं करता हैं और न किसीको बूरा भला कहता हैं। किन्तु दूसरोंके द्वारा अपने उपर लगाये हुये दोषोंको सुनकर अथवा आये हुवे उपद्रवोंपर भी विचलित चित्त नहीं होता है, और उन दुःख देनेवाले जीवों पर उल्टा करूणाभाव करके क्षमा देता है, तथा अपने द्वारा किये हुये अपराधोंको क्षमा मांग लेता है। इस प्रकार यह क्षमावान् पुरुष सदा निर्वैर हुआ, अपना जीवन सुख शांतिमय बनाता है।

(२) इसी प्रकार मार्दव धर्मधारी नरके क्षमा तो होती है किन्तु जाति, कुल, ऐश्वर्य, विद्या, तप और रूपादि समस्त प्रकारके मदोंके नाश होनेसे विनयभाव प्रकट होता है, अर्थात् यह प्राणी अपनेसे बडोंमें भक्ति व विनयभाव रखता है और छोटेमें करूणा व नम्रता रखता है, सबसे यथायोग्य मिष्टवचन

बोलता है और कभी भी किसीसे कठिन शब्दोंका प्रयोग नहीं करता है। इसीसे यह मिष्टभाषी विनयी पुरुष सर्वप्रिय होता है। और किसीसे द्वेष न होनेसे सानन्द जीवन यात्रा करता है।

(३) आर्जव धर्मधारी पुरुष, क्षमा और मार्दव धर्मपूर्वक ही आर्जवधर्म (सरलता) को धारण करता है। इसके जो कुछ बात मनमें होती है, सो ही वचनसे कहता और कही हुई बातको पुरी करता है। इस प्रकार यह सरल परिणामी पुरुष निष्कपट होनेके कारण निश्चिंत तथा सुखी होता है।

(४) सत्यवान पुरुष सदैव जो बात जैसी है, अथवा वह जैसी उसे जानता समझता है, वैसी ही कहता है, अन्यथा नहीं कहता, कहें हुये वचनोंको नहीं बदलता और न कभी किसीको हानि व दुःख पहुँचानेवाले वचन बोलता है। वह तो सदैव अपने वचनों पर दृढ रहता हैं। इसके उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव ये तीनों धर्म अवश्य ही होते है। यह पुरुष अन्यथा प्रलोपी न होनेसे विश्वास पात्र होता है और संसारमें सम्मान व सुखको प्राप्त होता है।

(५) शौचवान नर उपर्युक्त चारों धर्मोको पालता हुआ अपने आत्माको लोभसे बचाता है और जो पदार्थ न्यायपूर्वक उद्योग करनेसे उसके क्षयोपशमके अनुसार उसे प्राप्त होते है यह उसमें संतोष करता है और कभी स्वप्नमें भी परधन हरण करनेके भाव इनके नहीं होते है। यदि अशुभ कर्मके उदयसे इसे किसी प्रकारका कभी घाटा हो जाय अथवा और किसी प्रकारका द्रव्य चला जाय, तो भी यह दुःखी नहीं होता और अपने कर्मोका विपाक समझकर धैर्य धारण करता है, परंतु अपने घाटेकी पूर्तिके लिये कभी किसी दूसरेको हानि पहुँचानेकी चेष्टा नहीं करता है।

****
इसको तृष्णा न होनेके कारण सदा आनंदमें रहता है, और इसीलिये कभी किसीसे ठगाया भी नहीं जाता हैं।

(६) संयमी पुरुष भी उक्त पांचों व्रतोंको पालता हुआ अपनी इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे रोकता हैं। ऐसी अवस्थामें इसे कोई पदार्थ इष्ट व अनिष्ट प्रतीत नहीं होते हैं। क्योंकि विषयानुरागताके ही कारण अपने ग्रहण योग्य पदार्थ इष्ट और आरोचक व ग्रहण न करने योग्य अनिष्ट माने जाते हैं, सो इष्टानिष्ट कल्पना न रहनेके कारण उनमें हेयोपादेय कल्पना भी नहीं रहती है, तब समभाव होता हैं। इसीसे यह समरसी आनंदको प्राप्त करता हैं।

(७) तपस्वी पुरुष इन्द्रियोंको वश करता हुआ भी मनको पूर्ण रीतिसे वश करता है और उसे यत्र तत्र दौडनेसे रोकता हैं। किसी प्रकारकी इच्छा उत्पन्न नहीं होने देता है। जब इच्छा ही नहीं रहती तो आकुलता किस बातकी? यह अपने उपर आनेवाले सब प्रकारके उपसर्गोंको धीरता पूर्वक सहन करनेमें उद्यमी व समर्थ होता है। वास्तवमें ऐसा कोई भी सुरनर या पशु संसारमें नहीं जन्मा है, जो इस परम तपस्वीको उसके ध्यानसे किंचित्मात्र भी डिगा सके। इसलिये ही इस महापुरुषके एकाग्रचिंतानिरोध रूप धर्म व शुक्ल ध्यान होता हैं जिससे यह अनादिसे लगे हुये कठिन कर्मोका अल्प समयमें नाश करके सच्चे सुखोंका अनुभव करती है।

(८) त्यागी पुरुषके उक्त सातों व्रत तो होते ही है किन्तु उस पुरुषका आत्मा बहुत उदार हो जाता है। यह अपने आत्मासे रागद्वेषादि भावोंको दूर करने तथा स्वपर उपकारके निमित्त आहारादि चारों दान देता हैं, और दान देकर अपने

आपको धन्य व स्वसम्पतिको सफल हुई समझता हैं। यह कदापि स्वप्नमें भी अपनी ख्याति व यश नहीं चाहता और न दान देकर उसे स्मरण रखता अथवा न कभी किसी पर प्रगट ही करता है। वास्तवमें दान देकर भूल जाना ही दानीका स्वभाव होता है। इससे यह पुरुष सदा प्रसन्नचित रहता है। और मृत्युका समय उपस्थित होनेपर भी निराकुल रहता है। इसका चित्त धनादिमें फंसकर आर्त रौद्ररूप कभी नहीं होता और उसका आत्मा सद्‌गतिको प्राप्त होता है।

(९) आकिंचन्य–बाह्य आभ्यंतर समस्त प्रकारके परिग्रहोंसे ममत्व भावोंको छोड देनेवाला पुरुष सदैव निर्भय रहता है, उसे न कुछ सम्हालना और न रक्षा करनी पडती है। यहां तक कि यह अपने शरीर तकसे निस्पृह रहता है, तब ऐसे महापुरुषको कौन पदार्थ आकुलित कर सकता है, क्योंकि यह अपने आत्माके सिवाय समस्त परभावों या विभावोंको हेय अर्थात् त्याज्य समझता हैं। इसीसे कुछ भी ममत्व शेष नहीं रह जाता और समय समय असंख्यात व अनन्तगुणी कर्मोंकी निर्जरा होती रहती है, इसीसे यह सुखी रहता है।

(१०) ब्रह्मचर्यधारी महाबलवान योद्धा सदैव उक्त नव व्रतोंको धारण करता हुआ, निरंतर अपने आत्मामें ही रमण करता है यह बाह्य स्त्री आदिसे विरक्त रहता है उसकी दृष्टिमें सब जीव संसारमें एक समान प्रतीत होते हैं और स्त्री पुरुष, व नपुसंकादिका भेद कर्मकी उपाधि जानता है। यह सोचता है कि यह देह, हाड, मांस, मल, मूत्र, रुधीर, पीव आदि रागी जीवोंको सुहावनासा लगता है। यदि यह चामकी चादर हटा दी जाय अथवा वृद्धावस्था आ जाय तो फिर इसकी

****

ओर देखनेको भी जी न चाहे इत्यादि, ऐसे घृणित शरीरमें क्रीड़ा करना क्या है? मानों विष्टा (मल) के क्रीडायत उसमें अपने आपको फंसाकर चर्तुगतिके दुःखोंमें डालता है। इस प्रकार यह सुभट कामके दुजय किलेको तोड़कर अपने अनंत सुखमई आत्मामें ही विहार करता है। ऐसे महापुरुषोंका आदर सब जगह होता है और तब कोई भी कार्य संसारमें ऐसा नहीं रह जाता है कि जिसे यह अखण्ड ब्रह्मचारी न कर सके। तात्पर्य यह सब कुछ करनेको समर्थ होता है।

इस प्रकार इन दश धर्मोंका संक्षिप्त स्वरूप कहा सो तुमको निरन्तर इन धर्मोंको अपनी शक्ति अनुसार धारण करना चाहिए। अब इस दशलक्षण व्रतकी विधि कहते हैं -

भादों, माघ और चैत्र मासके शुक्ल पक्षमें पंचमीसे चतुर्दशी तक १० दिन पर्यंत व्रत किया जाता है। दशों दिन त्रिकाल सामायिक, प्रतिक्रमण, वन्दना, पूजन, अभिषेक, स्तवन, स्वाध्याय तथा धर्मचर्चा आदि कर और क्रमसे पंचमीको ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमल समुद्गताय उत्तमक्षमाधर्मांगाय नमः। इस मंत्रका १०८ बार एक एक समय इस प्रकार दिनमें ३२४ बार तीन काल सामायिकके समय जाप्य करे और इस उत्तम क्षमा गुणकी प्राप्तिके लिये भावना भावे तथा उसके स्वरूप वारंवार चिन्तवन करे। इसी प्रकार छठमीको ॐ ह्रीं अर्हन्मुख-कमलसमुद्गताय उत्तममार्दवधर्मांगाय नमः। का जाप कर भावना भावे। फिर सप्तमीको ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमआर्जवधर्मांगाय नमः, अष्टमीको ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमल-समुद्गताय उत्तमसत्यधर्मांगाय नमः, नवमीको ॐ ह्रीं अर्हन्मुख-कमलसमुद्गताय उत्तमशौचधर्मांगाय नमः, दशमीको ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमसंयमधर्मांगाय नमः, एकादशीको

ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमतपधर्मांगाय नमः, द्वादशको ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तम त्यागधर्मांगाय नमः, त्रयोदशीको ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तम आकिंचन्यधर्मांगाय नमः, चतुर्दशीको ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमल-समुद्गताय उत्तम ब्रह्मचर्यधर्मांगाय नमः, इत्यादि मंत्रोंका जाप करके भावना भावे।

समस्त दिन स्वाध्याय पूजादि धर्मकार्योंमें बितावे, रात्रिको जागरण भजन करे, सब प्रकारके रागद्वेष व क्रोधादि कषाय तथा इन्द्रिय विषयोंको बढानेवाली विकथाओंका तथा व्यापारादि समस्त प्रकारके आरंभोंका सर्वथा त्याग करें।

दसों दिन यथाशक्ति प्रोषध (उपवास), बेला, तेला आदि करे अथवा ऐसी शक्ति न हो तो एकाशना, उनोदर तथा रस त्याग करके करे, परंतु कामोत्तेजक, सचिक्कण, मिष्टगरिष्ठ (भारी) और स्वादिष्ट भोजनोंका त्याग कर, तथा अपना शरीर स्वच्छ खादीके कपडोंसे ही ढके। बढिया वस्त्रालंकार न धारण करे, और रेशम, ऊन तथा फेन्सी परदेशी व मिलोंके बने वस्त्र तो छुवे भी नहीं, क्योंकि वे अनंत जीवोंके घातसे बनते है और कामादिक विकारोंको बढानेवाले होते हैं।

इस कारण यह व्रत दश वर्ष तक पालन करनेके पश्चात् उत्साह सहित उद्यापन करे। अर्थात् छत्र, चमर आदि मंगल द्रव्य, जपमाला, कलश, वस्त्रादि धर्मोपकरण प्रत्येक दश दश श्री मंदिरजीमें पधराना चाहिये, तथा पूजा, विधानादि महोत्सव करना चाहिये। दुखित भुखितोंका भोजनादि दान देना चाहिये।

वांचनालय, विद्यालय, छात्रालय, औषधालय, अनाथालय, पुस्तकालय तथा दीन प्राणीरक्षक संस्थाए आदि स्थापित करना चाहिये। इस प्रकार द्रव्य खर्च करनेमें असमर्थ हो तो शक्ति

प्रमाण प्रभावनांगको बढानेवाला उत्सव करें अथवा सर्वथा असमर्थ हो तो द्विगुणित वर्षो प्रमाण (२० वर्ष) व्रत करे। इस व्रतका फल स्वर्ग तथा मोक्षकी प्राप्ति होती हैं।

यह उपदेश व व्रतकी विधि सुन उन चारों कन्याओंने मुनिराजकी साक्षी पूर्वक इस व्रतके स्वीकार किया, और निजघरोंको गई। पश्चात् दश वर्ष तक उन्होंने यथाशक्ति व्रत पालकर उद्यापन किया सो उत्तमक्षमादि धर्मोका अभ्यास हो जानेसे उन चारों कन्याओंका जीवन सुख और शांतिमय हो गया। ये चारों कन्याएं इस प्रकार सर्व स्त्री समाजमें मान्य हो गयी। पश्चात् वे अपनी आयु पूर्ण कर अंत समय समाधि मरण करके महाशुक्र नामक दशवें स्वर्गमें अमरगिरि अमरचूल देवप्रभु और पद्मसारथी नामक महर्दिक देव हुए।

वहांपर अनेक प्रकारके सुख भोगते और अकृत्रिम जिन चैत्यालयोंकी भक्ति वन्दना करते हुए अपनी आयु पूर्णकर वहांसे चले सो जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें मालवा प्रांतके उज्जैन नगरमें मूलभद्र राजाके घर लक्ष्मीमती नामकी रानीके गर्भसे पूर्णकुमार, देवकुमार, गुणचंद्र और पद्मकुमार नामके रूपवान व गुणवान पुत्र हुए और भले प्रकार बाल्यकाल व्यतित करके कुमारकालमें सब प्रकारकी विद्याओंमें निपुण हुए। पश्चात् इन चारोंका ब्याह नन्दनगरके राजा इण तथा उनकी पत्नी तिलकसुन्दरीके गर्भसे उत्पन्न कलावती, ब्राह्मी, इन्दुगात्री और कंकू नामकी चार अत्यंत रूपवान तथा गुणवान कन्याओंके साथ हुआ, और ये दम्पति प्रेमपूर्वक काल क्षेप करने लगे।

एक दिन राजा मूलभद्रने आकाशमें बादलोंको बिखरे देखकर संसारके विनाशीक स्वरूपका चिन्तवन किया और द्वादशानुप्रेक्षा भायी। पश्चात् ज्येष्ठ पुत्रको राज्यभार सौंपकर

****

आप परम दिगम्बर मुनि हो गये। इन चारों पुत्रोंने यथायोग्य प्रजाका पालन व मनुष्योचित भोग भोगकर कोई एक कारण पाकर जिनेश्वरी दीक्षा ली, और महान तपश्चरण करके केवलज्ञानको प्राप्त हो, अनेक देशोंमें विहार करके धर्मोपदेश दिया। फिर शेष अघातिया कर्मोंका भी नाश कर आयुके अंतमें योग निरोध करके परमपद (मोक्ष) को प्राप्त हो गये।

इस प्रकार उक्त चारों कन्याओंने विधिपूर्वक इस व्रतको धारण करके स्त्रीलिंग छेदकर स्वर्ग तथा मनुष्य गतिके सुख भोगकर मोक्षपद प्राप्त किया। इसी प्रकार जो और भव्य जीव मन, वचन, कायसे इस व्रतको पालन करेंगे वे भी उत्तमोत्तम सुखोंको प्राप्त होंगे।

मृगांकलेखादि कन्यायें दशलक्षण व्रत धार।
'दीप' लहो निर्वाण पद, वन्दूं बारम्बार॥१॥

◆

३ श्री षोडशकारण व्रत कथा

षोडशकारण भावना, जो भाई चित धार।
कर तिन पदकी वन्दना, कहूं कथा सुखकार॥

जम्बूद्वीप संबंधी भरतक्षेत्रके मगध (बिहार) प्रांतमें राजगृही नगर है। वहांके राजा हेमप्रभु और रानी विजयावती थी। इस राजाके यहां महाशर्मा नामक नौकर था, और उनकी स्त्रीका नाम प्रियवंदा था। इस प्रियवंदाके गर्भसे कालभैरवी नामक एक अत्यंत कुरूपी कन्या उत्पन्न हुई कि जिसे देखकर मातापितादि सभी स्वजनों तक को घृणा होती थीं।

****

एक दिन मतिसागर नामक चारणमुनि आकाशमार्गसे गमन करते हुए उसी नगरमें आये, तो उस महाशर्माने अत्यंत भक्ति सहित श्री मुनिको पडगाह कर विधिपूर्वक आहार दिया और उनसे धर्मोपदेश सुना। पश्चात् जुगलकर जोडकर विनययुक्त हो पूछा–हे नाथ! यह मेरी कालभैरवी नामकी कन्या किस पापकर्मके उदयसे ऐसी कुरूपी और कुलक्षणी उत्पन्न हुई हैं, सो कृपाकर कहिये? तब अवधिज्ञानके धारी श्री मुनिराज कहने लगे, वत्स! सुनो –

उज्जैन नगरीमें एक महिपाल नामका राजा और उसकी वेगावली नामकी रानी थी। इस रानीसे विशालाक्षी नामकी एक अत्यन्त सुंदर रूपवान कन्या थी, जो कि बहुत रूपवान होनेके कारण बहुत अभिमानिनी थी और इसी रूपके मदमें उसने एक भी सद्गुण न सीखा। यथार्थ है – अहंकारी (मानी) नरोंको विद्या नहीं आती है।

एक दिन वह कन्या अपनी चित्रसारीमें बैठी हुई दर्पणमें अपना मुख देख रही थी कि इतनेमें ज्ञानसूर्य नामके महातपस्वी श्री मुनिराज उसके घरसे आहार लेकर बाहर निकले, सो इस अज्ञान कन्याने रूपके मदसे मुनिको देखकर खिडकीसे मुनिके उपर थूंक दिया और बहुत हर्षित हुई।

परंतु पृथ्वीके समान क्षमावान श्री मुनिराज तो अपनी नीची दृष्टि किये हुये ही चले गये! यह देखकर राजपुरोहित इस कन्याका उन्मत्तपना देख उस पर बहुत क्रोधित हुआ, और तुरंत ही प्रासुक जलसे श्री मुनिराजका शरीर प्रक्षालन करके बहुत भक्तिसे वैयावृत्य कर स्तुति की। यह देखकर वह कन्या बहुत लज्जित हुई, और अपने किये हुये नीच कृत्य पर पश्चाताप करके श्री मुनिके पास गई और नमस्कार करके अपने

* *

अपराधकी क्षमा मांगी। श्री मुनिराजने उसको धर्मलाभ कहकर उपदेश दिया। पश्चात् यह कन्या वहांसे मरकर तेरे घर यह काल भैरवी नामकी कन्या हुई हैं। इसने जो पूर्वजन्ममें मुनिकी निन्दा व उपसर्ग करके जो घोर पाप किया है उसीके फलसे यह ऐसी कुरूपा हुई है, क्योंकि पूर्व संचित कर्मोंका फल भोगे बिना छुटकारा नहीं होता हैं! इसलिये अब इसे समभावोंसे भोगना ही कर्तव्य है और आगेको ऐसे कर्म न बन्धे ऐसा समीचीन उपाय करना योग्य है। अब पुनः यह महाशर्मा बोला– हे प्रभो! आप ही कृपाकर कोई ऐसा उपाय बताइये कि जिससे यह कन्या अब इस दुःखसे छूटकर सम्यक् सुखोंको प्राप्त होवे तब श्री मुनिराज बोले – वत्स! सुनो –

संसारमें मनुष्योंके लिये कोई भी कार्य असाध्य नहीं है, सो भला यह कितनासा दुःख है? जिनधर्मके सेवनसे तो अनादिकालसे लगे हुए जन्म मरणादि दुःख भी छूटकर सच्चे मोक्षसुखकी प्राप्ति होती है, और दुःखोंसे छूटनेकी तो बात ही क्या है? वे तो सहजहीमें छूट जाते हैं। इसलिये यदि यह कन्या षोडशकारण भावना भावे, और व्रत पाले, तो अल्पकाल में ही स्त्रीलिंग छेदकर मोक्ष–सुखको पायेगी। तब वह महाशर्मा बोला हे स्वामी! इस व्रतकी कौन कौन भावनायें है और विधि क्या? सो कृपाकर कहिये। तब मुनिराजने इन जिज्ञासुओंको निम्न प्रकार षोडशकारण व्रतका स्वरूप और विधि बताई। वे कहने लगे–

(१) संसारमें जीवका शत्रु मिथ्यात्व और मित्र सम्यक्त्व है। इसलिये मनुष्यका कर्तव्य है कि सबसे प्रथम मिथ्यात्व (अतत्त्व श्रद्धान या विपरीत श्रद्धान) को वमन (त्याग) करके सम्यक्त्वरूपी अमृतका पान करें। सत्यार्थ (जिन) देव, सच्चे

(निर्ग्रन्थ) गुरु और सच्चे (जिन भाषित) धर्म पर श्रद्धा (विश्वास) लावें। पश्चात् सप्त तत्त्वों तथा पुण्य पापका स्वरूप जानकर इनकी श्रद्धा करके अपने आत्माको पर पदार्थोंसे भिन्न अनुभव करें और इनके सिवाय अन्य मिथ्या देव गुरु व धर्मको दूर ही से इस प्रकार छोड दे जैसे तोता अवसर पाकर पिंजरेसे निकल भागता है। ऐसे सम्यक्त्वी पुरुषोंके प्रशम (मंद कषाय स्वरूप समभाव अर्थात् सुखी व दु:खमें समुद्र सरीखा गम्भीर रहना, घबराना नहीं), संवेग (धर्मानुराग सांसारिक विषयोंसे विरक्त हो धर्म और धर्मायतनोंमें प्रेम बढाना), अनुकंपा (करुणा दु:खी जीवों पर दयाभाव करके उनकी यथाशक्ति सहायता करना) और आस्तिक्य (श्रद्धा–कैसा भी अवसर क्यों न आवे, तो भी अपने निर्णय किये हुए सन्मार्गमें दृढ रहना) ये चार गुण प्रकट हो जाते हैं। उन्हें किसी प्रकारका भय व चिन्ता व्याकुल नहीं कर सकती। वे धीरवीर सदा प्रसन्नचित ही रहते हैं, कभी किसी चीजकी उन्हें प्रबल इच्छा नहीं होती, चाहे वे चारित्रमोह कर्मके उदयसे व्रत न भी ग्रहण कर सकें तो भी व्रत और व्रती संयमी जनोंमें उनकी श्रद्धा भक्ति व सहानुभूति अवश्य रहती हैं जो कि मोक्षमार्गकी प्रथम सोपान (सीढी) है इसलिये इसे ही २५ मलदोषोंसे रहित और अष्ट अंग सहित धारण करो। इसके बिना ज्ञान और चारित्र सब निष्फल (मिथ्या) हैं, यही दर्शनविशुद्धि नामकी प्रथम भावना है।

(२) जीव (मनुष्य) जो संसारमें सबकी दृष्टिसे उतर जाता है, उसका प्रधान कारण केवल अहंकार (मान) है। सो कदाचित् वह मानी अपनी समझमें भले ही अपने आपको बडा माने परंतु क्या कौआ मंदिरके शिखर पर बैठ जानेसे गरुड पक्षी हो सकता है? कभी नहीं। किन्तु सर्व ही प्राणी

उनके घृणा ही करते हैं और कदाचित् उनके पूर्व पुण्योदयसे उसे कोई कुछ न भी कह सकें, सो भी यह किसीके मनको बदल नहीं सकता है।

सत्य है–जो ऊपरको देखकर चलता है, वह अवश्य ही नीचे गिरता हैं। ऐसे मानी पुरुषको कभी कोई विद्या सिद्ध नहीं होती हैं, क्योंकि विद्या विनयसे आती है। मानी पुरुष चित्तमें सदा खेदित रहता है, क्योंकि वह सदा सबसे सम्मान चाहता हैं, और ऐसा होना असम्भव है, इसलिये निरन्तर सबको अपनेसे बड़ोंमें सदा विनय, समान (बराबरीवाले) पुरुषोंमें प्रेम और छोटोंमें करुणाभावसे प्रवर्तना चाहिये। सदैव अपने दोषोंको स्वीकार करनेके लिये सावधानता पूर्वक तत्पर रहना चाहिये, और दोष बतानेवाले सज्जनका उपकार मानना चाहिये, क्योंकि जो मानी पुरुष अपने दोषोंको स्वीकार नहीं करता, उनके दोष निरन्तर बढते ही जाते हैं और इसलिये वह कभी उनसे मुक्त नहीं हो सकता।

इसलिये दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और उपचार इन पांच प्रकारकी विनयोंका वास्तविक स्वरूप विचार कर विनयपूर्वक प्रवर्तन करना, सो विनय–सम्पन्नता नामकी दूसरी भावना हैं।

(३) विना मर्यादा अर्थात् प्रतिज्ञाके मन वश नहीं होता जैसा कि विना लगाम (बाग रास) के घोडा या बिना अंकुशके हाथी, इसलिये आवश्यक है कि मन व इन्द्रियोंको वश करनेके लिये कुश प्रतिज्ञारूपी अंकुश पासमें रखना चाहिये। तथा अहिंसा (किसी भी जीवका अथवा अपने भी द्रव्य तथा भाव प्राणोंका घात न करना अर्थात् उन्हें न सताना), सत्य (यथार्थ वचन बोलना, जो किसीको भी पीडाजनक न हों), अचौर्य (विना दिये हुए पर–वस्तुका ग्रहण न करना), ब्रह्मचर्य

****
(स्त्रीमात्रका अथवा स्वदार बिना अन्य स्त्रियोंके साथ विषय-मैथुन सेवनका त्याग) और स्वपर आत्माओंका विषय कषाय उत्पन्न करानेवाले बाह्य आभ्यन्तर परिग्रहोंका त्याग या प्रमाण (सम्पूर्ण परिग्रहोंका त्याग या अपनी योग्यता या शक्ति अनुसार आवश्यक वस्तुओंका प्रमाण करके अन्य समस्त पदार्थोंसे ममत्वभाव त्याग करना, इसे लोभको रोकना भी कहते हैं), इस प्रकार ये पांच व्रत और इसकी रक्षार्थ सप्तशीलों (३ गुणव्रतों और ४ शिक्षाव्रतों) का पालन करें तथा उक्त शील और व्रतोंके अतीचारों (दोषों) को भी बचायें। इन व्रतोंके निर्दोष पालन करनेसे न तो राज्यदंड कभी होता है और न पंचदण्ड होता है और ऐसा व्रती पुरुष अपने सदाचारसे सबका आदर्श बन जाता है। इसके विरुद्ध सदाचारी जनोंको इस भवमें और परभवमें अनेक प्रकार दण्ड व दु:ख सहने पडते हैं, ऐसा विचार करके इस व्रतोंमें निरन्तर दृढ होना चाहिये, यह शीलव्रतेष्वनतिचार भावना है।

(४) मिथ्यात्वके उदयसे हिताहितका स्वरूप बिना जाने यह संसारी जीव सदैव अपने लिये सुख प्राप्तिकी इच्छासे विपरीत ही मार्ग ग्रहण कर लेता है, जिससे सुख मिलना तो दूर रहा, किन्तु उल्टा दु:खका सामना करना पडता हैं। इसलिये निरन्तर ज्ञान सम्पादन करना परमावश्यक हैं। क्योंकि जहां चर्मचक्षु काम नहीं दे सकते हैं वहां ज्ञानचक्षु ही काम देते हैं। ज्ञानी पुरुष नेत्रहीन होनेपर भी अज्ञानी आंख वालोंसे अच्छा है। अज्ञानी न तो लौकिक कार्योंहीमें सफल मनोरथ होते हैं, और न परलौकिक ही कुछ साधन कर सकते हैं। वे ठौर ठौर ठगाये जाते है, और अपमानित होते हैं, इसलिये ज्ञान उपार्जन

****

करना आवश्यक है, ऐसा विचार करके निरन्तर विद्याभ्यास करना व कराना, सो अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग नामकी भावना हैं।

(५) इन संसारी जीवोंमेंसे प्रत्येक जीवके विषयानुरागता इतनी बढी हुई है कि कदाचित इसकी तीन लोककी समस्त सम्पत्ति भोगनेको मिल जाये तो भी उसकी इच्छाके असंख्यातवें भागकी पूर्ति न हो, सो जीव संसारमें अनन्तानन्त हैं, और लोकके पदार्थ जितने है उतने ही हैं सो जब सभी जीवोंकी अभिलाषा एसी ही बढी हुई है। तब यह लोककी सामग्री किस किसको कितने कितने अंशोंमें पूर्ति कर सकती है? अर्थात् किसीको नहीं। ऐसा विचार कर उत्तम पुरुष अपनी इन्द्रियोंको विषयोंसे रोककर मनको धर्मध्यानमें लगा देते हैं। इसीको संवेग भावना कहते है।

(६) जबतक मनुष्य किसी भी पदार्थमें ममत्व अर्थात् यह वस्तु मेरी है ऐसा भाव रखता हैं तब तक वह कभी सुखी नहीं हो सकता हैं क्योंकि पदार्थोंका स्वभाव नाशवान हैं, जो उत्पन्न हुए सो नियमसे नाश होंगे, और जो मिले हैं, सो बिछुडेंगे इसलिये जो कोई इन पदार्थोंको (जो इसे पूर्व पुण्योदयसे प्राप्त हुए हैं) अपने आपही इसको छोड जानेसे पहिले ही छोड देवे, ताकि वे (पदार्थ) उसे न छोड़ने पावें, तो निसन्देह दु:ख आनेका अवसर ही न आवेगा ऐसा विचार करके जो आहार, औषध, शास्त्र (विद्या) और अभय इन चार प्रकारके दानोंको मुनि, आर्जिका, श्रावक, श्राविकाओं (चार संघों) में भक्तिसे तथा दीन दु:खी नर पशुओंका करुणाभावोंसे देता है तथा अन्य यथावश्यक कार्यों (धर्मप्रभावना व परोपकार) में द्रव्य खर्च करता है उसे ही दान या शक्तितस्त्याग नामकी भावना कहते हैं।

****

(७) यह जीव स्व स्वरूप भूला हुआ इस घृणित देहमें ममत्व करके इसके पोषणार्थ नाना प्रकारके पाप करता है, तो भी यह शरीर स्थिर नहीं रहता, दिनोंदिन सेवा और सम्हाल करते करते क्षीण होता जाता है और एक दिन आयुकी स्थिति पूर्ण होते ही छोड देता है, सो ऐसे नाशवन्त और घृणित शरीरमें ममत्व (राग) न करके वास्तविक सच्चे सुखकी प्राप्तिके अर्थ इसको लगाना (उत्सर्ग करना) चाहिये ताकी इसका जो जीवके साथ अनंतानन्त वार संयोग तथा वियोग हुआ करता हैं, सो फिर ऐसा वियोग हो कि फिर कभी भी संयोग न हो सके अर्थात् मोक्षपदको प्राप्ति हो जाये। इसमें यही सार है, क्योंकि स्वर्ग नर्क या पशु पर्यायमें जो सम्यक् और उत्तम तपश्चरण पूर्ण हो ही नहीं सकता है, इसलिये यही मनुष्य जन्ममें श्रेष्ठ अवसर प्राप्त हुआ है ऐसा समझकर अपनी शक्ति व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावोंका विचार करने अनशन, ऊनोदर, व्रतपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विवक्त शय्याशन और कायक्लेश ये छः बाह्य और प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान ये छः अभ्यन्तर, इस प्रकार बारह तपोंमें प्रवृत्ति करना सो सातवी शक्तितस्तप नामकी भावना कहलाती हैं।

(८) जीव मात्रके कल्याण करनेवाले सम्यक् धर्मकी प्रवृत्ति धर्मात्माओंसे होती हैं और धर्मात्माओंसे सर्वोत्तम सम्यक्रत्नत्रयके धारी परम दिगम्बर साधु है, इसलिए साधु वर्गो पर आये हुए उपसर्गोको यथासम्भव दूर करना सो साधु समाधि नामकी भावना है।

(९) साधुसमूह तथा अन्य साधर्मीजनोंके शरीरमें किसी प्रकारकी रोगादिक व्याधि आ जानेसे उनसे परिणामोंमें शिथिलता व प्रमाद आ जाना संभव है इसलिये साधर्मी (साधु

****

व गृहस्थ) जनोंकी भक्तिभावसे उनको दर्शन तथा चारित्रमें स्थिर रखने तथा दीन दु:खी जीवोंको धर्म मार्गमें लगाकर उनके दु:ख दूर करनेके लिये उनकी सेवा तथा उपचार करनेको वैयावृत्यकरण भावना कहते हैं।

(१०) अरहन्त भगवानके द्वारा ही मोक्षमार्गका उपदेश मिलता है, क्योंकि वे प्रभु केवल कहते ही नहीं है किन्तु स्वयं मोक्षके सन्निकट पहुँच गये हैं, इसलिये उनके गुणोंमें अनुराग करना उनकी भक्ति पूर्वक पूजन, स्तवन तथा ध्यान करना सो अर्हद्‌भक्ति भावना है।

(११) बिना गुरुके सच्चे ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती, इसलिये सच्चे निरपेक्ष और हितैषी उपदेशक समस्त संघके नायक दीक्षा–शिक्षादि देकर निर्दोष धर्ममार्ग पर चलनेवाले आचार्य महाराजके गुणोंकी सराहना करना व उनमें अनुराग करना सो आचार्यभक्ति नाम भावना हैं।

(१२) अल्पश्रुत अर्थात् अपूर्ण आगमके जाननेवाले पुरुषोंके द्वारा सच्चे उपदेशकी प्राप्ति होना दुर्लभ क्या? असम्भव ही है। इसलिये समस्त द्वादशांगके पारगामी श्री उपाध्याय महाराज की भक्ति तथा उनके गुणोंमें अनुराग करना सो बहुश्रुतभक्ति नाम भावना हैं।

(१३) सदा अर्हन्त भगवानके मुखकमलसे प्रगटित मिथ्यात्व के नाश करने तथा सब जीवों हितकारी, वस्तु स्वरूपको बतानेवाला श्री जैन शास्त्रोंका पठनपाठनादि अभ्यास करना, सो प्रवचनभक्ति नाम भावना है।

(१४) मन, वचन, कायकी शुभाशुभ क्रियाओंको योग कहते हैं। इन ही योगोंके द्वारा शुभाशुभ कर्मोंका आश्रव होता

****

हैं। इसलिये यदि ये आश्रयके द्वार (योग) रोक दिये जाय, तो संवर कर्माश्रव बन्द हो सकता है और संवर करनेका उत्तमोत्तम उपाय सामायिक प्रतिक्रमण आदि षडावश्यक हैं।

इसलिये इन्हें नित्य प्रतिपालन करना चाहिये। पद्मासन या अर्द्धासनसे बैठकर या सीधे नीचेको हाथ जोड़कर खडे होकर मन, वचन, कायसे समस्त व्यापारोंको रोककर, चित्तको एकाग्र करके एक ज्ञेय (आत्मा) में स्थिर करना सो समभाव रूप १–सामायिक हैं। अपने किये हुए दोषोंको स्मरण करके उन पर पश्चाताप करना और उनको मिथ्या करनेके लिये प्रयत्न करना सो २–प्रतिक्रमण है। आगेके लिये दोष न होने देनेके लिये यथा शक्ति नियम करना और (दोषोंको त्याग करना) सौं ३–प्रत्याख्यान है। तीर्थंकरादि अर्हन्त आदि पंच परमेष्ठियों तथा चौबीस तीर्थंकरोके गुण किर्तन करना सो ४–स्तवन है। मन, वचन, काय शुद्ध करके चारों दिशाओंमें चार शिरोनति और प्रत्येक दिशामें तीन आवर्त ऐसे बारह आवर्त करके पूर्व या उत्तर दिशामें अष्टांग नमस्कार करना तथा एक तीर्थंकरकी स्तुति करना सों ५–वन्दना है। और किसी समय विशेषका प्रणाम करके उतने समय तक एकासनसे स्थित रहना तथा उतने समयके भीतर शरीरसे मोह छोड़ देना, उसपर आये हुए समस्त उपसर्ग व परीषहोंको समभावोंसे सहन करना सो ६–कार्योत्सर्ग है। इस प्रकार विचार कर इन छहों आवश्यकोंमें जो सावधान होकर प्रवर्तन करता है सो परम संवरका कारण आवश्यकापरिहाणि नामकी भावना है।

(१५) काल–दोषके अथवा उपदेशके अभावसे संसारी जीवोंके द्वारा सत्य धर्मपर अनेकों आक्षेप होनेके कारण उसका लोप सा हो जाता है। धर्मके लोप होनेसे जीव भी धर्म रहित होकर संसारमें नाना प्रकारके दु:खोंको प्राप्त होते हैं। इसलिये

ऐसे ऐसे समयोंमें येन केन प्रकारेण समस्त जीवोंपर सत्य (जिन) धर्मका प्रभाव प्रगट कर देना, सो मार्गप्रभावना हैं। और यह प्रभावना जिन धर्मके उपदेशोंके प्रचार करने शास्त्रोंके प्रकाशन व प्रसारणसे, शास्त्रोंके अध्ययन या अध्यापन करने करानेसे, विद्वानोंकी सभायें कराने, अपने आप सदाचरण पालने लोकोपकारी कार्य करने, दान देने, संघ निकालने व विद्यामंदिरोंकी स्थापना व प्रतिष्ठादि करने, सत्य व्यवहार करने संयम व तपादिक करनेसे होती हैं, ऐसा समझकर यथाशक्ति प्रभावनोत्पादक कर्मोंमें प्रवर्तना सो मार्गप्रभावना नामकी भावना है।

(१६) संसारमें रहते हुए जीवोंकी परस्पर सहायता व उपकारकी आवश्यकता रहती हैं, ऐसी अवस्थामें यदि निष्कपट भावसे अथवा प्रेमपूर्वक सहायता न की जाय, तो परस्पर यथार्थ लाभ पहुँचना दुर्लभ ही है। इतना ही नहीं किन्तु परस्परके विरोधसे अनेकानेक हानियां व दुःख होना सम्भव है, जैसे हो भी रहे हैं। इसलिये यह परमावश्यक कर्तव्य हैं कि प्राणी परस्पर (गायका अपने बछड़े पर जैसा कि निष्कपट और प्रगाढ़ प्रेम होता है वैसा ही) निष्कपट प्रेम करें। विशेषकर साधर्मियोंके संग तो कृत्रिम प्रेम कभी न करे। ऐसा विचार कर जो साधर्मियों तथा प्राणी मात्रसे अपना निष्कपट व्यवहार रखते हैं उसे प्रवचन-वात्सल्य नामकी भावना कहते हैं।

इन १६ भावनाओंको यदि केवली श्रुतकेवलीके पादमूलके निकट अन्तःकरणसे चिन्तवन की जायें तथा तदनुसार प्रवर्तन किया जाय तो इनका फल तीर्थंकर नामकर्मके आश्रवका कारण हैं आचार्य महाराज इस प्रकार सोलह भावनाओंका स्वरूप कहकर अब व्रतकी विधि कहते हैं -

****

भादों, माघ और चैत्र (गुजराती श्रावण, पौष और फाल्गुन) वदी ५ से कुंवार, फाल्गुन और वैशाख वदी १ (गुजराती भादों, माघ, चैत वदी १) तक (एक वर्षमें तीन बार) पूरे एक एक मास तक यह व्रत करना चाहिये।

इन दिनों तेला बेला आदि उपवास करें अथवा नीरस या एक आदि दो तीन रस त्यागकर ऊनोदर पूर्वक अतिथि या दीन दु:खी नर या पशुओंको भोजनादि दान देकर एकभुक्त करे अंजन, मंजन, वस्त्रालंकार विशेष धारण न करे, शीलव्रत (ब्रह्मचर्य) रक्खे नित्य षोडश कारण भावना भावे और यंत्र बनाकर पूजाभिषेक करे, त्रिकाल सामायिक करे। और (ॐ ह्रीं दर्शन–विशुद्धि विनयसम्पन्नता, शीलव्रतेष्वनतिचार अभीक्ष्ण, ज्ञानोपयोग, संवेग, शक्तितस्त्याग, शक्तितस्तप, साधुसमाधि, वैयावृत्यकरण, अर्हद्भक्ति, आचार्यभक्ति, उपाध्यायभक्ति, प्रवचनभक्ति, आवश्यकापरिहाणि, मार्ग प्रभावना, प्रवचन–वात्सल्यादि षोडशकारणेभ्यो नम:)।

इस महामंत्रका दिनमें तीन बार १०८ एक सो आठ बार जाप करें। इस प्रकार इस व्रतको उत्कृष्ट सोलह वर्ष, मध्यम ५ अथवा दो वर्ष और जधन्य १ वर्ष करके यथाशक्ति उद्यापन करे। अर्थात् सोलह सोलह उपकरण श्री मंदिरजीमें भेट दें और शास्त्र व विद्यादान करे, शास्त्र भण्डार खोले, सरस्वती मंदिर बनावे, पवित्र जिनधर्मका उपदेश करे और करावे इत्यादि यदि द्रव्य खर्च करनेकी शक्ति न हो तो व्रत द्विगुणित करे।

इस प्रकार ऋषिराजके मुखसे व्रतकी विधि सुनकर कालभैरवी नामकी उस ब्राह्मण कन्याने षोडशकारण व्रत स्वीकार करके उत्कृष्ट रीतिसे पालन किया, भावना भायी और विधिपूर्वक उद्यापन किया, पीछे वह आयुके अंतमें समाधिमरण

****

द्वारा स्त्रीलिंग छेदकर सोलहवें (अच्युत) स्वर्गमें देव हुई। वहांसे बाइस सागर आयु पूर्णकर यह देव, जम्बूद्वीपके विदेहक्षेत्र संबंधी अमरावती देशके गंधर्व नगरमें राजा श्रीमंदिरकी रानी महादेवीके सीमन्धर नामका तीर्थंकर पुत्र हुआ सो योग्य अवस्थाको प्राप्त होकर राज्योचित सुख भोग जिनेश्वरी दीक्षा ली और घोर तपश्चरण कर केवलज्ञान प्राप्त करके बहुत जीवोंको धर्मोपदेश दिया, तथा आयुके अंतमें समस्त अघाति कर्मोंका भी नाश कर निर्वाण पथ प्राप्त किया।

इस प्रकार इस व्रतको धारण करनेसे कालभैरवी नामकी ब्राह्मण कन्याने सुरनर भवोंके सुखोंको भोगकर अक्षय अविनाशी स्वाधीन मोक्षसुखको प्राप्त कर लिया, तो जो अन्य भव्यजीव इस व्रतको पालन करेंगे उनको भी अवश्य ही उत्तम फलकी प्राप्ति होवेगी।

षोडशकारण व्रत धरो, कालभैरवी सार।
सुरनरके सुख 'दीप' लह, लहो मोक्ष अधिकार॥१॥

❒

४ श्री श्रुतस्कन्ध व्रत कथा

श्रुतस्कन्ध वन्दूं सदा, मन वच शीश नवाय।
जा प्रसाद विद्या लहूँ, कहूँ कथा सुखदाय॥१॥

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें एक अंग नामका देश है, उसके पाटलीपुत्र (पटना) नगरमें राजा चन्द्ररुचिकी पट्टरानी चंद्रप्रभा के श्रुतशालिनी नामकी एक अत्यंत रुपवान कन्या थी, सो राजाने इस कन्याको जिनमति नामकी आर्या (गुरानी) के पास पढ़ानेको बिठाई जिससे वह थोडी ही दिनोंमें विद्यामें निपुण

****

हो गई। एक दिन कन्याने अपनी ही बुद्धिसे चौकीपर श्रुतस्कंध मण्डल बनाया। इसे देखकर गुरानीको आश्चर्य हुआ और कन्याकी बहुत प्रशंसा की तथा समझा कि अब यह विद्यामें निपुण हो चुकी है, इसलिये उसे सहर्ष राजाके पास घर जानेकी आज्ञा दी। राजा कन्याको विदुषी देखकर बहुत हर्षित हुआ और गुरानीकी भूरि भूरि प्रशंसा की तथा उचित पुरस्कार (भेंट) भी दिया।

एक दिन इसी नगरके उद्यानमें श्री १०८ वर्द्धमान मुनि आये। यह समाचार सुनकर राजा अपने परिवार तथा पुरजनों सहित उत्साहसे वन्दनाको गये। और भक्तिपूर्वक वन्दना करके मुनि चरणोंके निकट बैठा। मुनिराजने धर्मवृद्धि कहकर धर्मका स्वरूप समझाया, जिसे सुनकर लोगोंने यथाशक्ति व्रतादिक लिये। पश्चात् राजाने कन्याकी ओर देखकर पूछा—हे ऋषिराज! यह कन्या किस पुण्यसे ऐसी रूपवान और विदुषी हुई है? तब मुनिश्री बोले—

इसी जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह संबंधी पुष्कलावती देशमें पुण्डरीकनी नगरी है। वहांका राजा गुणभद्र और रानी गुणवती थी। सो एक समय यह राजा रानी सपरिवार श्रीमन्धरस्वामीकी वंदनाको गये और यथायोग्य भक्ति वंदना करके नर कोठेमें बैठे। पश्चात् सप्त तत्व और पुण्य पापका स्वरूप सुनकर श्री गुरुसे पूछा—हे प्रभु! कृपाकर श्रुतस्कन्ध व्रतका क्या स्वरूप है, सो समझाये। तब गणधर महाराजने कहा—श्री जिनेन्द्र भगवानकी दिव्यध्वनि सातिशय निरक्षरी (वाणी) मेघकी गर्जना के समान ॐकाररूप भव्यजीवोंके हितार्थ उनके पुण्य अतिशय के कारण और भगवानकी वचन वर्गणाके उदयसे खिरती है। इसे सर्व सभाजन अपनी अपनी भाषाओंमें समझ लेते हैं। इस

****

वाणीको चार ज्ञानधारी गणनायक मुनि अल्पज्ञानी जीवोंके संबोधनार्थ (आचारांग, सूत्रकृतांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातृकथांग, उपासकाध्ययनांग, अन्तकृद्दशांग, अनुत्तरोप-पादकदशांग प्रश्नव्याकरणांग, सूत्रविपाकांग और दृष्टिप्रवादांग), इस प्रकार द्वादशांग रुपसे कथन की। फिर इन्हींके आधारसे और मुनियोंने भी भेदाभेद पूर्वक देशभाषाओंमें कथन की हैं। यह जिनेन्द्रवाणी समस्त लोकालोकके स्वरुप और त्रिकालवर्ती पदार्थोंको प्रदर्शित करनेवाली समस्त प्राणियोंके हितरूप मिथ्यामतोंकी उत्थापक, पूर्वापरके विरोधसे रहित अनुपमेय है, सो जो भव्यजीव इस वाणीको सुनकर हृदयरूप करता अथवा उसकी भावना भाकर व्रत संयम धारण करता है, वह भी अनेक शास्त्रोंका पारगामी हो जाता है। इस व्रतकी विधि इस प्रकार है कि भादों मासमें नित्य श्री जिन चैत्यालयमें श्रुतस्कंध मण्डल मांडकर श्रुतस्कन्ध पूजन विधान करे और एक मासमें उत्कृष्ट १६, मध्यम १० और जघन्य आठ उपवास करे। पारणा के दिन यथाशक्ति नीरस व एक दो आदि रस छोडकर एकभुक्त करे। इस प्रकार यह व्रत बारह वर्ष तक अथवा पांच वर्ष तक करे, पीछे उद्यापन करे बारह बारह उपकरण घण्टा, झालर, पूजाके वर्तन, छत्र, चमर, चन्दोवा, चौकी वेष्टनादि मंदिरमें भेट करे, शास्त्र लिखाकर जिनालयमें पधरावे, तथा श्रावकोंको भेट देवे और शास्त्र–भण्डारोंकी सम्हाल करे, नवीन सरस्वती भवन बनावे, सर्वसाधारणजनोंको श्री जिनवाणीका उपदेश करे और करावे। इस प्रकार यह व्रत धारण करनेसे अनुक्रमसे केवलज्ञानकी प्राप्ति होकर सिद्धपद प्राप्त होता हैं।

जाप्य नित्य दिनमें तीन बार जपे–'ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्-भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानेभ्यो नमः' और भावना भावे। इस प्रकार राजा गुणभद्र और गुणवती रानीने व्रतकी विधि

****

सुनकर भाव सहित धारण किया और भावना भाई। सो अन्तसमय समाधिमरण कर अच्युतस्वर्गमें इन्द्र इन्द्राणी हुए। वहांसे यह रानीका जीव (इन्द्राणी) चयकर यह तेरे श्रुतशालिनी नामकी कन्या हुई।

इस प्रकार गुरुमुखसे भवांतर सुनकर उस कन्याने पुनः श्रुतस्कंध व्रत धारण किया और चारित्रके प्रभावसे विषयकषायों को अतिशय मंद किया, पश्चात् अंत समयमें समाधिसे मरण कर स्त्रीलिंगको छेदकर इन्द्रपद प्राप्त किया और वहांके अनुपम सुख भोगकर अपरविदेह कुमुदवती देशके अशोकपुरमें पद्मनाभ राजाकी पट्टरानी जितपद्माके गर्भसे नयन्धर नाम तीर्थंकर हुआ। साथ ही चक्रवर्ती और कामदेवपदको भी सुशोभित किया। बहुत समय तक नीतिपूर्वक प्रजाका पालन किया। पश्चात् एक दिन इन्द्रधनुषको आकाशमें विलीन होते देख वैराग्य उत्पन्न हुआ। सो अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आश्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म वैराग्यको दृढ़ करनेवाली इन बारह भावनाओंका चिंतवन कर दीक्षा ग्रहण की, और कितनेक कालतक उत्कृष्ट संयम पालकर शुक्लध्यानके योगसे केवलज्ञान प्राप्त किया, तब देवोंने समवशरण की रचना की। इस प्रकार अनेक देशोंमें विहार करके भव्य जीवोंको वस्तुस्वरुपका उपदेश दिया और आयुके अन्त समयमें अघाति कर्मोको नाश करके अविनाशी सिद्धपद प्राप्त किया। इस प्रकार और भी जो नरनारी भाव सहित इस व्रतका पालन करेंगे तो अवश्य ही उत्तम पदको प्राप्त होवेंगे।

श्रुतशालिनी कन्या कियो, श्रुतस्कन्ध व्रत सार।
'दीप' कर्म सब नाश कर, लहो मोक्ष सुखकार॥

५ श्री त्रिलोक तीज व्रत कथा

वन्दों श्री जिनदेव पद, वन्दूं गुरु अणगार।
वन्दूं माता सरस्वती, कथा कहूं हितकार॥

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्र संबंधी कुरुजांगल देशमें हस्तिनापुर नामक एक अति रमणीक नगर है। यहांका राजा कामदुक और रानी कमललोचना थी, और उनके विशाखदत्त नामका पुत्र था। उस राजाके वरदत्त नामका एक मंत्री था, जिसकी विशालाक्षी पत्नीसे विजयसुन्दरी नामक एक कन्या बहुत सुन्दर थी, जिसका पाणिग्रहण राजपुत्र विशाखदत्तने किया था। कितनेक दिन बाद राजा कामदुककी मृत्यु होने पर युवराज विशाखदत्त राजा हुआ।

एक दिन राजा अपने पिताके वियोगसे व्याकुल हो उदास बैठा था कि उसी समय उस ओर विहार करते हुए श्री ज्ञानसागर नामके मुनिवर पधारे। राजाने उनको भक्तिपूर्वक नमस्कार करके उच्चासन दिया, तब मुनिश्रीने धर्मवृद्धि कह आशीष दी और इस प्रकार संबोधन करने लगे---

राजा! सुनो, यह काल (मृत्यु), सुर (देव), नर पशु आदि किसीको भी नहीं छोडता हैं। संसारमें जो उत्पन्न होता है सो नियमसे नाश होता है। ऐसी विनाशीक वस्तुके संयोग वियोगमें हर्ष विषाद ही क्या? यह तो पक्षियोंके समान रैन (रात्री) बसेरा है। जहाजमें देश देशांतरके अनेक लोग आ मिलते हैं, परंतु अवधि पूरी होने पर सब अपने२ देशको चले जाते हैं।

इसी प्रकार ये जीव एक कुल (वंश-परिवार) में अनेक गतियोंसे आ आकर एकत्रित होते हैं और अपनी अपनी आयु पूर्ण कर संचित कर्मानुसार यथायोग्य गतियोंमें चले जाते हैं। किसीकी

****

यह सामर्थ्य नहीं कि क्षणमात्र भी आयुको बढ़ा सके। यदि ऐसा होता तो बडे बडे तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि पुरुषोंको क्यों कोई मरने देता? मृत्युसे यद्यपि वियोगजनित दुःख अवश्य ही मोहके वश मालूम होता हैं, तथापि उपकार भी बहुत होता हैं। यदि मृत्यु नहीं होती तो रोगी रोगसे मुक्त न होता, संसारी कभी सिद्ध न हो सकता, जो जिस दशामें होता उसीमें रह जाता। इसलिये यह मृत्यु उपकारी भी है, ऐसा समझकर शोक तजो। इस शोकसे (आर्तध्यानसे) अशुभ कर्मोंका बन्ध होता है जिससे अनेकों जन्मांतरो तक रोना पडता हैं। रोना बहुत दुःखदाई हैं।

मुनिके उपदेशासे राजाको कुछ धैर्य बन्धा। ये शोक तजकर प्रजापालनमें तत्पर हुए और मुनिराज भी विहार कर गये।

एक दिन रानीने संयमभूषण आर्जिकाके दर्शन करके पूछा–माताजी! मेरे योग्य कोई व्रत बताईये जिससे मेरी चिंता दूर होवे और जन्म सुधरे तब आर्जिकाजीने कहा–तुम त्रैलोक्य तीज व्रत करो। भादों सुदी ३ को उपवास करके चौवीस तीर्थंकरोंके ७२ कोठेका मंडल मांडकर तीन चौवीसी पूजा विधान करो और तीनों काल १०८ जाप (ॐ ह्रीं भूतवर्तमानभविष्यत्कालसंबंधिचतुर्विंशतीर्थङ्करेभ्यो नमः) जपे, रात्रिको जागरण करके भजन व धर्मध्यानमें काल वितावे। इस प्रकार तीन वर्ष तक यह व्रत कर पीछे उद्यापन करे, अथवा द्विगुणित करे। इसे दूसरे लोग रोट तीज भी कहते हैं।

उद्यापन करनेके समय तीन चौवीसीका मण्डल मांडकर बडा विधान पूजन करे और प्रत्येक प्रकारके उपकरण तीन तीन श्री मंदिरजीमें भेट करे चतुर्संघको चार प्रकारका दान देवे। शास्त्र लिखाकर बांटे। इस प्रकार रानीने व्रतकी विधि सुनकर विधिपूर्वक इसे धारण किया। पश्चात् आयुके अन्तमें समाधिमरण

करके सोलहवें स्वर्गमें स्त्रीलिंग छेदकर देव हुई वहां नाना प्रकारके देवोचित सुख भोगे, तथा अकृत्रिम जिन चैत्यालयोंकी वन्दना आदि करते हुये यथा साध्य धर्मध्यानमें समय बिताया।

पश्चात् वहांसे चयकर मगधदेशके कंचनपुर नगरमें राजा पिंगल और रानी कमललोचनाके सुमंगल नामका अति रूपवान तथा गुणवान पुत्र हुआ। सो वह राजपुत्र एक दिन अपने मित्रों सहित वनक्रीडाको गया था, कि वहांपर परम दिगम्बर मुनिको देखकर उसे मोह उत्पन्न हो गया, सो मुनिकी वन्दना करके पाद निकट बैठा और पूछने लगा–हे प्रभो! आपको देखकर मुझे मोह क्यों उत्पन्न हुआ?

तब श्री गुरु कहने लगे–वत्स! सुन, यह जीव अनादिकाल से मोहादि कर्मोंसे लिप्त हो रहा है, और क्या जाने इसके किस किस समयके बांधे हुए कौन कौन कर्म उदयमें आते है जिनके कारण यह प्राणी कभी हर्ष व कभी विषादको प्राप्त होता हैं।

इस समय जो तुझे मोह हुआ है इसका कारण यह हैं कि इसके तीरसे भवमें तू हस्तिनापुरके राजा विशाखदत्तकी भार्या विजयसुन्दरी नामकी रानी थी, सो तुझे संयमभूषण आर्यिकाने सम्बोधन करके त्रैलोक्य तीजका व्रत दिया था, जिसके प्रभावसे तु स्त्रीलिंग छेदकर स्वर्गमें देव हुआ, और वहांसे चयकर यहां राजा पिंगलके शुमंगल नामका पुत्र हुआ है और वह संयमभूषण आर्यिकाका जीव वहांसे समाधिमरण करके स्वर्गमें देव हुआ। .

वहांसे चयकर यहां मैं मनुष्य हुआ हूँ, सो कोई कारण पाकर दीक्षा लेकर विहार करता हुआ यहां आया हूं। इसलिये तुझे पूर्व स्नेहके कारण यह मोह हुआ है।

हे वत्स! यह मोह महादुःखका देनेवाला त्यागने योग्य है। यह सुनकर सुमंगलको वैराग्य उत्पन्न हुआ, और उसने इस संसारको विडम्बनारूप जानकर तत्काल जिनेश्वरी दीक्षा धारण की। और कितनेक काल तक घोर तपश्चरण करके केवलज्ञानको प्राप्त होकर मोक्षपद प्राप्त किया।

इस प्रकार विजय सुन्दरी रानीने त्रैलोक्य तीज व्रतको पालन कर देवों और मनुष्योंके उत्तम सुखोंको भोगकर निर्वाण पद प्राप्त किया। सो यदि और भी भव्य जीव श्रद्धा सहित यह व्रत पालें तो वे भी ऐसी उत्तम गतिको प्राप्त होवेंगे।

विजयसुन्दरी व्रत किया, तीज त्रिलोक महान।
सुरनरके सुख भोगकर, 'दीप' लहा निर्वाण॥१॥

८ श्री मुकुट सप्तमी व्रत कथा

पंच परमपद प्रणाम करि, शारद मात नमाय।
मुकुटसप्तमी व्रत कथा, भाषा कहूँ बनाय॥

जम्बूद्वीपके कुरुजांगल देशमें हस्तिनापुर नगर है। वहांके राजा विजयसेनकी रानीं विजयावतीसे मुकुटशेखरी और विधिशेखरी नामकी दो कन्याएं थी। इन दोनों बहिनोंमें परस्पर ऐसी प्रीति थी कि एक दूसरीके बिना क्षणभर भी नहीं रह सकती थी। निदान राजाने ये दोनों कन्याएं अयोध्याके राजपुत्र त्रिलोकमणिको ब्याह दी।

एक दिन बुद्धिसागर और सुबुद्धिसागर नामके दो चारणऋषि आहारके निमित्त नगरमें आये। सो राजाने उन्हें विधिपूर्वक पडगाहकर आहार दिया, और धर्मोपदेश श्रवण करनेके अनंतर राजाने पूछा—हे नाथ! मेरी इन दोनों पुत्रियोंमें परस्पर इतना विशेष प्रेम होनेका कारण क्या है?

****

तब श्री ऋषिराज बोले—इसी नगरमें धनदत्त नामक एक सेठ था, उनके जिनवती नामकी एक कन्या थी और यहीं एक माली की वनमती कन्या भी थी सो इन दोनों कन्याओंने मुनिके द्वारा धर्मोपदेश सुनकर मुकुटसप्तमी व्रत ग्रहण किया था। एक समय ये दोनों कन्याएं उद्यानमे खेल रही थी, (मनोरंजन कर रही थीं) किइन्हें सर्पने काट खाया सो नवकार मंत्रका आराधन करके देवी हुयीं और वहांसे चयकर तुम्हारी पुत्री हुई है। सो इनका यह स्नेह भवांतरसे चला आ रहा हैं। इस प्रकार भवांतरकी कथा सुनकर दोनों कन्याओंने प्रथम श्रावकके पंच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इस प्रकार बारह व्रत लिये, और पुन: मुकुटसप्तमी व्रत धारण किया। सो प्रतिवर्ष श्रावण सुदी सप्तमीको प्रोषध करती और 'ॐ ह्रीं वृषभतीर्थंकरेभ्यो नमः' इस मंत्रका जाप्य करती, तथा अष्टद्रव्यसे श्री जिनालयमें जाकर भाव सहित जिनेन्द्रकी पूजा करती थी।

इस प्रकार यह व्रत उन्होंने सात वर्ष तक विधिपूर्वक किया पश्चात् विधिपूर्वक उद्यापन करके सात सात उपकरण जिनालयमें भेंट किये। इस प्रकार उन्होंने व्रत पूर्ण किया और अंतमें समाधिमरण करके सोलवें स्वर्गमें स्त्रीलिंग छेदकर इन्द्र और प्रतिन्द्र हुई। वहां पर देवोचित सुख भोगे और धर्मध्यानमें विशेष समय बिताया।

पश्चात् वहांसे चयकर ये दोनों इन्द्र प्रत्येन्द्र मनुष्य होकर कर्म काटके मोक्ष जावेंगे। इस प्रकार सेठजी तथा माली की कन्याओंने व्रत (मुकुटसप्तमी) पालकर स्वर्गोके अपूर्व सुख भोगे। अब वहांसे चयकर मनुष्य ही मोक्ष जावेंगे। धन्य है! जो और भव्य जीव, भाव सहित यह व्रत धारण करे, तो वे भी इसी प्रकार सुखोंको प्राप्त होयेंगे।

श्रेष्ठी अरु माली सुता, मुकुटसप्तमी व्रत धार।
भये इन्द्र प्रतिन्द्र द्वय, अरु हुई हैं भव पार॥

****

७ अक्षय (फल) दशमी व्रत कथा

ॐकार हृदयं धरूं सरस्वतिको शिरनाय।

अक्षयदशमी व्रत कथा, भाषा कहूं बनाय॥१॥

इसी राजगृही नगरमें मेघनाद नामके राजाकी रानी पृथ्वीदेवी अत्यन्त रूप और शीलवान थी, परंतु कोई पूर्व पापके उदयसे पुत्रविहीन होनेसे सदा दुःखी रहती थी। एक दिन अति आतुर हो यह कहने लगी–हे भर्तार! क्या कभी मैं कुलमण्डन स्वरूप बालकको अपनी गोदमें खिलाऊंगी? क्या कभी ऐसा शुभोदय होगा कि जब मैं पुत्रवती कहाऊंगी।

अहा! देखो, संसारमें स्त्रियोंको पुत्रकी कितनी अभिलाषा होती है? वे इस ही इच्छासे दिनरात व्याकुल रहती अनेकों उपचार करती और कितनी ही तो (जिन्हें धर्मका ज्ञान नहीं है) अपना कुलाचरण भी छोड़कर धर्म तकसे गिर जाती हैं। यह सुनकर राजाने रानीसे कहा–प्रिये! चिन्ता न करो, पुण्यके उदयसे सब कुछ होता है। हम लोगोंने पूर्व जन्मोंमें कोई ऐसा ही कर्म किया होगा कि जिसके कारण निःसंतान हो रहे हैं। इस प्रकार वे राजा रानी परस्पर धैर्य बन्धाते कालक्षेप करते थे।

एक दिन उनके शुभोदयसे श्री शुभंकर नाम मुनिराजका शुभागमन हुआ, सो राजा रानी उनके दर्शनार्थ गये। उनकी वन्दना करनेके अनन्तर धर्म श्रवण करके राजाने पूछा–

हे प्रभु! आप त्रिकाल ज्ञानी है, आपको सब पदार्थ दर्पणवत प्रतिभाषित होते हैं, सो कृपाकर यह बताईये कि किस कारणसे मेरे घर पुत्र नहीं होता हैं? तब श्री गुरुने भवांतरकी कथा

विचार कर कहा– हे राजा! पूर्व जन्ममें इस तुम्हारी रानीने मुनिदानमें अन्तराय किया था, इसी कारण से तुम्हारे पुत्रकी अन्तराय हो रही हैं। तब राजाने कहा–प्रभु! कृपया कोई यत्न बताईये, कि जिससे इस पापकर्मका अन्त आवे।

यह सुनकर श्री मुनिराज बोले–वत्स! तुम अक्षय (फल) दशमी व्रत करो। श्रावण सुदी १० को प्रोषध करके श्री जिनमंदिरमें जाकर भाव सहित पूजन विधान करो, पंचामृताभिषेक करो और 'ॐ नमो ऋषभाय' इस मंत्रका जाप्य करो। यह व्रत दश वर्ष तक करके उद्यापन करो, दश दश उपकरण श्री मंदिरजीमें भेट करो, दश शास्त्र लिखाकर साधर्मियोंको भेंट करो, और भी दीनदु:खी जीवों पर दया दान करो, विद्यादान देवो, अनाथोंकी रक्षा करो जिससे शीघ्र ही पापका नाश हो सातिशय पुण्य लाभ हो इत्यादि विधि सुनकर राजा राणी आए और विधिपूर्वक व्रत पालन करके उद्यापन किया।

सो इस व्रतके महात्म्य तथा पूर्व पापके क्षय होनेसे राजाको सात पुत्र और पांच कन्याएं हुई। इस प्रकार कितनेक कालतक राजा दया धर्मको पालन करते हुए मनुष्योचित सुख भोगते रहे। पश्चात् समाधिमरण करके पहिले स्वर्गमें देव हुए और वहांसे चयकर मनुष्य भव लेकर मोक्षपद प्राप्त किया। इस प्रकार और भव्य जीव यदि श्रद्धा सहित यह व्रत पालेंगे तो उन्हें भी उत्तमोत्तम सुखोंकी प्राप्ति होवेगी।

अक्षय दशमी व्रत थकी, मेघनाद नृप सार।
'दीप' रहीं पंचम गती नमूं त्रिलोक सम्हार॥

****

८ श्री श्रावण द्वादशी व्रत कथा

प्रणमूं श्री अरहन्त पद, प्रणमूं शारद माय।
श्रावण द्वादशी व्रत कथा, कहूं भव्य हितदाय॥

मालवा प्रांतमें पद्मावतीपुर नामक एक नगर था, यहांका राजा नरब्रह्म और रानी विजयवल्लभा थी। इनके शीलवती नामकी एक अति कुरूपा, कानी कुबडी कन्या उत्पन्न हुई। ज्यों ज्यों यह कन्या बडी होती थी त्यों त्यों माता-पिताको चिंता बढ़ती जाती थी।

एक दिन ये राजा रानी इस प्रकार चिंता कर रहे थे कि इस कुरुपा कन्यासे पाणिग्रहण कौन करेगा? कि पुण्य योगसे उन्हें वनमाली द्वारा यह समाचार मिला कि उद्यानमें श्रवणोत्तम नाम यतीश्वर देशदेशांतरोंमें विहार करते हुए आये हैं! सों राजा उत्साह सहित स्वजन और पुरजनोंको साथ लेकर श्री गुरुकी वन्दनाके लिये वनमें गया और तीन पदक्षिणा देकर प्रभुको नमस्कार करके यथायोग्य स्थानमें बैठा।

श्री गुरुने धर्मवृद्धि कहकर आशीर्वाद दिया और मुनि श्रावकके धर्मका उपदेश देकर निश्चय व्यवहार व रत्नत्रय धर्मका स्वरुप समझाया।

पश्चात् राजाने नतमस्तक हो पूछा-हे प्रभो! यह मेरी पुत्री किस पापके उदयसे ऐसी कुरुपा हुई हैं?

तब श्रीगुरुने कहा-अवंती देशमें पांडलपुर नामका नगर था। वहांका राजा संग्रामभल्ल और रानी वसुन्धरा थी। उसी नगरमें देवशर्मा नामक पुरोहित और उसकी कालसुरी नामकी स्त्री थी। इस ब्राह्मणके अत्यन्त रुपवान एक कपिला नामकी

कन्या थी। एक दिन यह कपिलाकुमारी अपनी सखियोंके साथ अठखेलियां करती हुई वनक्रीडाके लिये नगरके बाहर गई, सो वहां श्री परम दिगम्बर साधुको देखकर उनकी अत्यंत निंदा की और घृणाकी दृष्टिसे यह सखियोंसे कहने लगी– देखोरी बहनों, यह कैसा निर्लज्ज पापी पुरुष है कि पशुके समान नग्न फिरा करता है, और अपना अंग स्त्रियोंको दिखाता है। लोगों को ठगनेके लिये लंघन करके वनमें बैठा रहता है, अथवा कभी कभी ऐसा नंगा वनसे वस्तीमें फिरता रहता है। धिक्कार है इसके नरजन्म पानेको इत्यादि अनेको कुवचन कह कर मुनिके मस्तक पर धूल डाल दी और थूक भी दिया।

सो अनेकों उपसर्ग आनेपर भी मुनिराज तो ध्यानसे किंचित्मात्र भी विचलित न हुए और समभावोंसे उपसर्ग जीतकर केवलज्ञान प्राप्त कर परम पदको प्राप्त हुए, परंतु यह कपिला जिसने मदोन्मत्त होकर श्री योगीराजको उपसर्ग किया था, मरकर प्रथम नरकमें गई। वहांसे निकल कर गधी हुई फिर हथिनी, फिर बिल्ली, फिर नागिन, फिर चांडालनी हुई और वहांसे मरकर तुम्हारे घर पुत्री हुई है। सो हे राजा! इस प्रकार मुनि निंदाके पापसे इसकी यह दुर्गति हुई है।

राजाने यह भवांतरका वृत्तांत सुनकर पूछा–हे नाथ! इसका यह पाप कैसे छूटे सो कृपाकर कहिये?

तब स्वामीने कहा–राजा! सुनो, संसारमें ऐसा कोनसा कार्य हैं कि जिसका उपाय न हो। यदि मनुष्य अपने पूर्व कर्मोकी आलोचना निंदा व गर्हना करके आगेको उन पापोंसे पराङ्मुख होकर पुनः न करनेकी प्रतिज्ञा करे और पूर्व पापोंकी निर्जरार्थ व्रतादिक करे तो पापोंसे छूट सकता हैं।

****

इसलिये यह पुत्री सम्यक्तपूर्वक श्रावण शुक्ला द्वादशी व्रतको धारण करे तो इस कष्टसे छूट सकती है। इस व्रतकी विधि निम्न प्रकार है—श्रावण सुदी एकादशीको प्रातःकाल स्नानादि करके श्री जिन पूजा करे और पश्चात् भोजन करके सामायिकके समय द्वादशी व्रतके उपवासकी धारणा (नियम) करे। इसी समयसे अपना काल धर्मध्यानमें बितावें और द्वादशी को भी नियमानुसार उठकर नित्य क्रियासे निवृत्त हो श्री जिनमंदिरमें जाकर उत्साह सहित पंचामृत अभिषेक कर स्तवनादि पूजन करे अर्थात् पाठ और मंत्रोंको स्पष्ट बोलकर प्रासुक अष्टद्रव्य चढाये और णमोकार मंत्र (३५ अक्षर) का पुष्पों द्वारा १०८ बार जाप करे। सामायिक स्वाध्यायादि धर्मध्यानमें काल बिताये। फिर त्रयोदशीको इसी प्रकार अभिषेक पूर्वक पूजनादि करनेके पश्चात् किसी अतिथि या दीन दुःखीको भोजन दान करनेके बाद भोजन करे। इस प्रकार एक वर्षमें एक बार करे। सो बारह वर्ष तक करे। पश्चात् उत्साह सहित उद्यापन करे।

अर्थात् चारमुखी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा कराये। अथवा जहां मंदिर हो वहां चार महान् ग्रंथ लिखाकर जिनालयमें पधराये वेष्टन, चौकी, छत्र चमरादि उपकरण चढाये, परोपकारमें द्रव्य खर्च करे। व्यापार रहितोंको व्यापारार्थ पूंजी लगा देवे। पठनाभिलाषियोंको छात्रवृत्ति देकर पढनेको भेजे, रोगीको औषधि, निःसहाय दीनोंको अन्न वस्त्र औषधादि देवे, भयभीत जीवोंको भयरहित करे, मरतेको बचावे इत्यादि। और यदि उद्यापन की शक्ति न हो तो दूना व्रत करे।

इस व्रतके फलसे यह तेरी कन्या यहांसे मरण करके तेरे ही घर अर्ककेतु नामका पुत्र होगा और उनके छोटा चन्द्रकेतु होगा सो चन्दकेतु युद्धमें मरकर पीछे अर्ककेतुका पुत्र होगा पश्चात् अर्ककेतु कितने काल राज्य करके अंतमें

****

माता सहित जिनदीक्षा लेगा सो समाधिमरण करके बारहवें स्वर्गमें महर्द्धिक देव होगा, और फिर मनुष्य भव लेकर तपके योगसे केवलज्ञानको प्राप्त हो मोक्षपद प्राप्त करेगा! इसकी माता विजयप्रभा प्रथम स्वर्गमें देवी होगी। चन्द्रकेतुका जीव भी अवसर पाकर सिद्धपदको प्राप्त करेगा।

इस प्रकार राजा व्रतकी विधि और उसका फल सुनकर घर आया और उसकी कन्याने यथाविधि व्रत पालन करके श्री गुरुके कथनानुसार उत्तमोत्तम फल प्राप्त किये। इस प्रकार और भी जो स्त्री पुरुष श्रद्धा सहित इस व्रतको पालन करेंगे वे भी इसी प्रकार फल पायेंगे।

श्रावण द्वादशी व्रत कियो, शीलवती चित्त धार।
किये अष्ट विधि नष्ट सब, लह्यो सिद्धपद सार॥

९ श्री रोहिणी व्रत कथा

वन्दूं श्री अर्हन्त पद, मन वच शीश नमाय।
कहूँ रोहिणी व्रत कथा, दुःख दारिद्र नश जाय॥

अंग देशमें चम्पापुरी नाम नगरीका स्वामी माधवा नाम राजा था। उसकी परम सुन्दरी लक्ष्मीमती नामकी रानी थी। उसके सात गुणवान पुत्र और एक रोहिणी नाम की कन्या थी। एक समय राजाने निमित्तज्ञानीसे पूछा कि मेरी पुत्रीका वर कौन होगा? तब निमित्तज्ञानी विचार कर कहा कि हस्तिनापुरका राजा वातशोक और उसकी रानी विद्युतश्रवाका पुत्र अशोक तेरी पुत्रीके साथ पाणिग्रहण करेगा।

* *

यह सुनकर राजाने स्वयंवर मण्डप रचाया और सब देशोंके राजकुमारको आमंत्रण पत्र भेजे। जब नियत समय पर राजकुमारगण एकत्रित हुए तो कन्या रोहिणी एक सुन्दर पुष्पमाला लिये हुए सभामें आई और सब राजकुमारोंका परिचय पानेके अनन्तर अंतमें राजकुमार अशोकके गलेमें वरमाला डाल दी। राजकुमार अशोक रोहिणीसे पाणिग्रहण कर उसे घर ले आया और कितनेक काल तक सुखपूर्वक जीवन व्यतीत किया।

एक समय हस्तिनापुरके वनमें श्री चारण मुनिराज आये। यह समाचार सुनकर राजा निज प्रिया सहित श्री गुरुकी वंदनाको गया, और तीन प्रदक्षिणा दे दण्डवत करके बैठ गया। पश्चात् श्री गुरुके मुखसे तत्त्वोपदेश सुनकर राजा हर्षित मन हो पूछने लगा–स्वामी! मेरी रानी इतनी शांतचित क्यों है?

तब श्री गुरुने कहा–सुनो, इसी नगरमें वस्तुपाल नामका राजा था और उसका धनमित्र नामका मित्र था। उस धनमित्र के दुर्गन्धा कन्या उत्पन्न हुई। सो उस कन्याको देखकर माता पिता निरन्तर चिंतावान रहते थे कि इस कन्याको कौन वरेगा? पश्चात् जब वह कन्या सयानी हुई तब धनमित्रने उसका ब्याह धनका लोभ देकर एक श्रीषेण नामके लड़के (जो कि उसके मित्र सुमित्रका पुत्र था) से कर दिया।

यह सुमित्रका पुत्र श्रीषेण अत्यन्त व्यसनासक्त था। एक समय वह जुआमें सब धन हार गया, तब चोरी करनेको किसी के घरमें घूसा। उसे यमदण्ड नाम कोतवालने पकड़ लिया और दृढ बन्धनसे बांध दिया। इसी कठिन अवसरमें धनमित्रने श्रीषेणसे अपनी पुत्रीके ब्याह करनेका वचन ले लिया था। इसीलिए श्रीषेणने उससे ब्याह तो कर लिया, परंतु वह स्वस्त्रीके शरीरकी अत्यन्त दुर्गन्धसे पीडित होकर एक ही मासमें उसे

****

परित्याग करके देशांतरको चला गया। निदान वह दुर्गन्धा अत्यन्त व्याकुल हुई और अपने पूर्व पापोंका फल भोगने लगी।

इसी समय अमृतसेन नामके मुनिराज इसी नगरके वनमें विहार करते हुए आये। यह जानकर सकल नगरलोक वन्दनाको गये और धनमित्र भी अपनी दुर्गन्धा कन्या सहित वन्दनाको गया। सो धर्मोपदेश सुननेके अनन्तर उसने अपनी पुत्रीके भवांतर पूछे तब श्री गुरुने कहा–

सोरठ देशमें गिरनार पर्वतके निकट एक नगर है! वहां भूपाल नामक राजा राज्य करता था। उसके सिन्धुमती नाम की रानी थी। एक समय वसन्तऋतुमें राजा रानी सहित वनक्रीडाको चला सो मार्गमें श्री मुनिराजको देखकर राजाने रानीसे कहा कि तुम घर जाकर श्री गुरुके आहारकी विधि लगाओ।

राजाज्ञासे यद्यपि रानी घर तो गई तथापि वनक्रीडा समय वियोग जनित संतापसे तब उस रानीने इस वियोगका सम्पूर्ण अपराध मुनिराजके माथे मढ दिया, और जब वे आहारको वस्तीमें आये तो पडगाहकर कडुवी तुम्बीका आहार दिया, जिससे मुनिराजके शरीरमें अत्यन्त वेदना उत्पन्न हो गई, और उन्होंने तत्काल प्राण त्याग कर दिये।

नगरके लोग यह वार्ता सुनकर आये, और मुनिराजके मृतक शरीरकी अंतिम क्रिया कर रानीकी इस दुष्कृत्यकी निन्दा करते हुए निज निज स्थानको चले गये। राजाको भी इस दुष्कृत्यकी खबर लग गई तो उन्होंने रानीको तुरन्त ही नगर से बाहर निकाल दिया।

इस पापसे रानीके शरीरमें उसी जन्ममें कोढ़ उत्पन्न हो गया, जिससे शरीर गल गलकर गिरने लगा तथा शीत, उष्ण

****

और भूख प्यासकी वेदनासे उसका चित्त विह्वल रहने लगा। इस प्रकार वह रौद्र भावोंसे मरकर नर्कमें गई। वहांपर भी मारन, ताड़न, छेदन, भेदन, शूलीरोहणादि घोरान्घोर दुःख भोगे। वहांसे निकलकर गायके पेटमें अवतार लिया और अब यह तेरे घर दुर्गन्धा कन्या हुई है।

यह पूर्व वृत्तांत सुनकर धनमित्रने पूछा—हे नाथ! कोई व्रत विधानादि धर्म कार्य बताइये जिससे यह पातक दूर होवे, तब स्वामीने कहा—सम्यग्दर्शन सहित रोहिणीव्रत पालन करो, अर्थात् प्रति मासमें रोहिणी नामका नक्षत्र जिस दिन होवे, उस दिन चारो प्रकारके आहारका त्याग करे और श्री जिन चैत्यालयमें जाकर धर्मध्यान सहित सोलह पहर व्यतीत करे अर्थात् सामायिक, स्वाध्याय, धर्मचर्चा, पूजा, अभिषेकादिमें काल बितावे और स्वशक्ति अनुसार दान करे।

इस प्रकार यह व्रत ५ वर्ष और ५ मास तक करे। पश्चात् उद्यापन करे। अर्थात् छत्र, चमर, ध्वजा, पाटला आदि उपकरण मंदिरमें चढावे, साधुजनों व साधर्मी तथा विद्यार्थियोंको शास्त्र देवे, वेष्टन देवे, चारो प्रकारके दान देवे और जो द्रव्य खर्च करनेकी शक्ति न हो तो दूना व्रत करे।

दुर्गन्धाने मुनिश्रीके मुखसे व्रतकी विधि सुनकर श्रद्धापूर्वक उसे धारण कर पालन किया, और आयुके अन्तमें सन्यास सहित मरण कर प्रथम स्वर्गमें देवी हुई वहांसे आकर मघवा राजाकी पुत्री और तेरी परमप्रिया स्त्री हुई है। इस प्रकार रानीके भवांतर सुनकर राजाने अपने भवांतर पूछे—

तब स्वामीने कहा—तू प्रथम भवमें भील था। तूने मुनिराजको घोर उपसर्ग किया था। सो तू वहांसे मरकर पापके फलसे

सातवें नर्क गया। वहांसे तेतीस सागर दुःख भोगकर निकला। सो अनेक कुयोनियोंमें भ्रमण करता हुआ तूने एक वणिकके घर जन्म लिया। सो अत्यन्त घृणित शरीर पाया। लोग दुर्गन्धके मारे तेरे पास न आते थे।

तब तूने मुनिराजके उपदेशसे रोहिणीव्रत किया, उसके फलसे तू स्वर्गमें देव हुआ। और फिर वहांसे चयकर विदेह क्षेत्रमें अर्ककीर्ति चक्रवर्ती हुआ वहांसे दीक्षा ले तप करके देवेन्द्र हुआ। और स्वर्गसे आकर तू अशोक नामक राजा हुआ है।

राजा अशोक यह वृत्तांत सुनकर घर आया और कुछ कालतक सानन्द राज्य भोगा। पश्चात् एक दिन वहां वासुपूज्य भगवानका समवशरण आया सुनकर राजा वन्दना को गया और धर्मोपदेश सुनकर अत्यन्त वैराग्यको प्राप्त हो श्री जिन दीक्षा ली। रोहिणी रानीने भी दीक्षा ग्रहण की।

सो राजा अशोकने तो उसी भवमें शुक्लध्यानसे घातिया कर्मोका नाश कर केवल ज्ञान प्राप्त किया और मोक्ष गये और रोहिणी आर्या भी समाधिमरण कर स्त्रीलिंग छेद स्वर्गमें देव हुई। अब वह देव वहांसे चयकर मोक्ष प्राप्त करेगा। इस प्रकार राजा अशोक और रानी रोहिणी, रोहिणीव्रतके प्रभावसे स्वर्गादिके सुख भोगकर मोक्षको प्राप्त हुए व होंगे इसी प्रकार अन्य भव्य जीव भी श्रद्धासहित यह व्रत पालेंगे वे भी उत्तमोत्तम सुख पावेंगे।

व्रत रोहिणी रोहिणी कियो, अरु अशोक भूपाल।
स्वर्ग मोक्ष सम्पति लही, 'दीप' नवावत भाल॥

(१०) श्री आकाश पंचमी व्रत कथा

द्वादशांगवाणी नमूं, धरूं हृदय शुभ ध्यान।
कथाऽऽकाश पंचमी तनी, कहूं स्वपर हित जान॥

आर्य खण्डके सोरठ देशमें तिलकपुर नामका एक विशाल नगर था। यहां महीपाल नामका राजा और विचक्षणा नामक रानी थी। उसी नगरमें भद्रशाल नामका व्यापारी रहता था उसकी नन्दा नामकी स्त्री से विशाला नामकी पुत्री उत्पन्न हुई।

यद्यपि यह कन्या अत्यन्त रूपवान थी, तथापि इसके मुखपर सफेद कोढ़ हो जानेसे सारी सुन्दरता नष्ट हो गई थी। इसलिये उसके माता पिता तथा वह कन्या स्वयं भी रोया करती थी, परंतु कर्मोंसे क्या वश है? निदान माताका उपदेशसे पुत्री धर्म ध्यानसे रत रहने लगी, जिससे कुछ दुःख कम हुआ।

एक दिन एक वैद्य आया और उसने सिद्धचक्रकी आराधना करके औषधि दी जिससे उस कन्याका रोग दूर हो गया। तब उस भद्रशालने अपनी कन्या उसी वैद्यको ब्याह दी। पश्चात् वह पिंगल वैद्य उस विशाला नामकी वणिक पुत्रीके साथ कितने ही दिन पीछे देशाटन करता हुआ, चितोड़गढ़की ओर आया, वहां पर भीलोंने उसे मारकर सब धन लूट लिया।

निदान विशाला वहांसे पति और द्रव्य रहित हुई नगरके जिनालयमें गई और जिनराजके दर्शन करके वहां तिष्ठे हुए श्रीगुरुको नमस्कार करके बोली–प्रभु! मैं अनाथनी हूँ, मेरा सर्वस्व खो गया, पति भी मारा गया और द्रव्य भी लूट गया। अब मुझे कुछ नहीं सूझता है कि क्या करूं, कृपाकर कुछ कल्याणका मार्ग बताईये।

तब मुनिराजने कहा—बेटी सुनो, यह जीव सदैव अपने ही पूर्वकृत कर्मोंका शुभाशुभ फल भोगता हैं। तू प्रथम जन्ममें इसी नगरमें वेश्या थी। तू रूपवान तो थी ही, परंतु गायन विद्यामें भी निपूण थी।

एक समय सोमदत्त नामके मुनिराज यहां आये। यह सुनकर नगरलोक वंदनाको गये और बहुत उत्साहसे उत्सव किया सो जैसे सूर्यका प्रकाश उल्लुको अच्छा नहीं लगता, उसी प्रकार कुछ मिथ्यात्वी विधर्मी लोगोंने मुनिसे वादविवाद किया और अन्तमें हारकर वेश्या (तुझे ही) को मुनिके पास ठगनेके लिए (भ्रष्ट करनेको) भेजा तो तूने पूर्ण स्त्री चरित्र फैलाया, सब प्रकार रिझाया, शरीरका आलिंगन भी किया, परंतु जैसे सूर्य पर धूल फेकनेसे सूर्यका कुछ बिगड़ता ही नहीं किन्तु फैकनेवाले हीका उल्टा बिगाड होता है उसी प्रकार मुनिराज तो अचल मेरुवत स्थिर रहे और तू हार मानकर लौट आई।

इससे इन मिथ्यात्वी अधर्मियो को बड़ा दु:ख हुआ, और तुझे भी बहुत पश्चाताप हुआ। अन्तमें तुझे कोढ़ हो गया सो दु:खित अवस्थामें मरकर तू चौथे नर्क गई। वहांसे आकर तू यहां वणिकके घर पुत्री हुई हैं। यहां भी तुझे सफेद कोढ़ हुआ था। सो पिंगल वैद्यने तुझे अच्छा किया और उसीसे तेरा पाणिग्रहण भी हुआ था।

पश्चात् पूर्व पापके उदयसे चोरोंने उसे मार डाला और तू उससे बचकर यहां तक आई है। अब यदि तू कुछ धर्माचरण धारण करेगी, तो शीघ्र ही इस पापसे छूटेगी इसलिये सबसे प्रथम तू सम्यग्दर्शनको स्वीकार कर अर्थात् श्री अर्हन्त देव, निर्ग्रन्थ गुरू और दयामयी जिन भगवानके कहे हुए धर्मशास्त्रके सिवाय अन्य मिथ्या देव, गुरु और धर्मको छोड जीवादिक सात तत्त्वोंका

****

श्रद्धान् कर और सम्यग्दर्शनके निःशंकित आदि आठ अंगोंका पालन करके उसके २५ मल दोषोंका त्यागकर, तब निर्मल सम्यग्दर्शन सधेगा। इस प्रकार सम्यक्त्वपूर्वक श्रावकके अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य और परिग्रह परिमाण आदि १२ व्रतको पालन करते हुए आकाशपंचमी व्रतको भी पालन करे।

यह व्रत भादों सुदी ५ को किया जाता है। इस दिन चार प्रकारका आहार त्यागकर उपवास धारण करे, और अष्ट प्रकारके द्रव्यसे श्रीजिनालयमें जाकर भगवानका अभिषेक पूर्वक पूजन करे। पश्चात् रात्रिके समय खुले मैदानमें या छत (अगासी) पर बैठकर भजनपूर्वक जागरण करे। तथा वहां भी सिंहासन रखकर श्री चौवीस तीर्थंकरोंकी प्रतिमा स्थापन करे और प्रत्येक प्रहरमें अभिषेक करके पूजन करे, और यदि उस समय उस स्थान पर वर्षा आदिके कारण कितने ही उपसर्ग आवे तो सब सहन करे परंतु स्थानको न छोडे।

तीनों समय महामंत्र नवकारके १०८ जाप करे। इस प्रकार ५ वर्ष तक करे। जब व्रत पुरा हो जावे तो उत्साह सहित उद्यापन करे।

छत्र, चमर, सिंहासन, तोरण, पूजनके बर्तन आदि प्रत्येक ५ (पांच) नग मंदिरमें भेट करे, और कमसे कम पांच शास्त्र पधरावे। चार प्रकारके संघको चारो प्रकारका दान देवे। और भी विशेष प्रभावना करे। इस प्रकार विशाला कन्याने श्रद्धापूर्वक बारह व्रत स्वीकार किये, और इस आकाशपंचमी व्रतको भी विधि सहित पालन किया। पश्चात् समाधिमरण कर वह चौथे स्वर्गमें मणिभद्र नामका देव हुआ।

वहां उसने देवाँगनाओं सहित क्रीडा करते हुए अनेक तीर्थोंके दर्शन, पूजा, वंदना तथा समोशरण आदिकी वंदना की।

****

उत्पन्न हुई सो कर्मयोगसे इन दोनों वर कन्या (धनभद्र और जिनमती) का पाणिग्रहण संस्कार भी हो गया। तब जिनमती अपने पतिके साथ ससुराल गई और गृहस्थीकी रीतिके अनुसार अपने पतिके साथ नाना प्रकारके सुख भोगने लगी, परंतु पूर्व कर्म संयोगसे जिनमती और उसकी सासुमें अनबनावसा रहने लगा।

कुछ कालके अनन्तर धनपाल सेठ कालवश हुआ, तब जिनमतीने सासुसे कहा–

माताजी! पतिका, क्रिया कर्म कीजिये और दानादिक शुभ कर्म करिये। इस पर सासुने ध्यान नहीं दिया, किन्तु उल्टा उसने बहुसे रीस करके पूजा होम आदिका सामान जो बहुने इकट्ठा कर रखा था रात्रिको उठकर भक्षण कर लिया सो तिल आदि पदार्थोंके भक्षण करनेसे उसे अजीर्ण हो गया और यह उदीर्णा मरणसे अपने ही घरमें कोकिला (गृहगाधा) हुई।

जिनमती अपने पति धनभद्र सहित सुखसे कालक्षेप करने लगी। उसकी सासु जो कोकिला हुई थी, सो हर समय अपने पूर्व वैरके कारण जिनमतीके उपर बीट (मल) कर दिया करती थी, इस कारण जिनमती बहुत दुःखी रहने लगी। एक दिन भाग्योदयसे श्री मुनिराज विहार करते हुए यहां आ गये सो जिनमती स्नान कर पवित्र वस्त्र पहिन कर श्री गुरुके दर्शन को गई। और भक्तिपूर्वक वंदना करके शांतिपूर्वक सत्यार्थ देव गुरु धर्मका व्याख्यान सुना। पश्चात् नतमस्तक होकर बोली।

हे प्रभु! यह कोकिला नामका न जाने कौन दुष्ट जीवधारी है, जो हमको निशदिन दुःख देता है। तब श्री गुरुने कहा–यह तेरी सासु धनमती का जीव है। इसने पूर्वभवमें पूजा होम आदिका सामान नैवेद्य, तिल आदि भक्षण किया जिससे यह अजीर्ण रोगसे

आयुकी उदीरणा कर मरी और कोकिला हुई है, सो उसी भवके वैरके कारण यह तुझे कष्ट पहुँचाती है। तब जिनमतीने कहा स्वामीजी! यह पाप कैसे छूट सकता है?

श्री मुनिराजने उत्तर दिया—बेटी! संसारमें कुछ भी कठिन नहीं है। यथार्थमें सब काम परिश्रमसे सरल हो जाते हैं। तुम अर्हतदेव, निर्ग्रन्थ गुरु और दयामयी धर्म पर श्रद्धा रखकर, कोकिला पंचमी व्रत पालन करो तो निःसंदेह यह उपद्रव दूर हो जायगा।

इसके लिये तुम आषाढवदी पंचमीसे ५ मास तक प्रत्येक कृष्ण पक्षकी ५ को, इस प्रकार एक वर्षकी पांच पांच पंचमी पांच वर्ष तक करो।

अर्थात् इन दिनोंमें प्रोषध धारण कर अभिषेकपूर्वक जिन पूजा करो और धर्मध्यानमें धारणा पारणा सहित सोलह प्रहर व्यतीत करो। सुपात्रोंमें भक्ति तथा दीन दुःखी जीवोंको करुणापूर्वक दान देवो, पश्चात् उद्यापन करो। पांच जिनबिंब पधराओ, पांच शास्त्र लिखाओ, पांच वर्णका पंचपरमेष्ठीका मण्डल मांडकर श्री जिनपूजा विधान करो। पांच प्रकारका पकवान बनाकर चार संघको भोजन कराओ। पांच गागर पांच प्रकारके मेवोंसे भरकर श्रावकोंको भेट दो। पांच ध्वजा चैत्यालयमें चढाओ, पांच चन्दोवा, पांच अछार, पांच छत्र, पांच चमर आदि पांच पांच उपकरण बनवाकर मंदिरमें भेंट चढाओ, विद्यालय बनवावो, श्राविका शालायें खोलो, रोगी जीवोंके रोग निवारणार्थ औषधालय नियत करो, इस प्रकार शक्ति प्रमाण चतुर्विध दानशालाएं खोलकर स्वपर हित करो, तथा श्रद्धासहित व्रत उपवास करो।

यह सुनकर जिनमतीने मुनिको नमस्कार करके व्रत लिया और उसकी सासु जो कोकिला हुई थी, उसने भी अपने

भवांतरकी गुरुमुखसे सुनकर अपनी आत्मनिन्दा की और शुभ भावोंसे मरकर स्वर्गमें देव हुई। जिनमती और धनभद्र भी व्रतके प्रभावसे स्वर्गमें देव हुए।

अब वहांसे आकर विदेह क्षेत्रमें जन्म लेकर मोक्ष जायेंगे। इस प्रकार जिनमती और धनभद्रने कोकिलापंचमी व्रत पालन कर उत्तम गतिका बन्ध किया। जो अन्य नरनारी यह व्रत करें तो क्यों न उत्तम पदको प्राप्त होवेंगे। अवश्य ही होवेंगे।

धनभद्र अरु जिनमती, कोकिला पंचमी सार।
कियो व्रत शुभ बन्ध कर, जासे मुक्ति मंझार॥

(१२) श्री चन्दनषष्ठी व्रत कथा

देव नमो अरहन्त नित, वीतराग विज्ञान।
चन्दनषष्ठी व्रत कथा, कहूँ स्वपर हित जान॥

काशी देशमें बनारस नामका प्रसिद्ध नगर है। जिसको तेइसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ भगवानके अपने जन्म धारण करनेसे पवित्र किया था। उसी नगरमें किसी समय एक सूरसेन नामका राजा राज करता था। उसकी रानीका नाम पद्मनी था।

एक दिन वह राजा सभामें बैठा था, कि वनपालने आकर छः ऋतुओंके फल फूल लाकर राजाको भेंट किये। राजा इस शुभ भेटसे केवली भगवानका शुभागमन जानकर स्वजन और पुरजन सहित वंदनाको गया और भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणा करके नमस्कार करके बैठ गया।

श्री मुनिराजने प्रथम ही मुनिधर्मका वर्णन करके पश्चात् श्रावक धर्मका वर्णन किया। उसमें भी सबसे प्रथम सब धर्मोंका

मूल सम्यग्दर्शनका उपदेश दिया कि–वस्तुस्वरूपका यथार्थ श्रद्धान हुए विना सब ज्ञान और चारित्र निष्फल है, और यह वस्तुस्वरूपका श्रद्धान यथार्थ देव (अर्हन्त) यथार्थ गुरु (निर्ग्रन्थ और) दयामयी (जिन प्रणीत) धर्मसे ही होता है।

अतएव प्रथम ही इनका परीक्षापूर्वक श्रद्धान होना आवश्यकीय है। तत्पश्चात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य और परिग्रह त्याग ये पांच व्रत एकदेश पालन करे तथा इन्हींके यथोचित पालनार्थ सप्तशीलों (तीन गुणव्रत व चार शिक्षाव्रतों) का भी पालन करें, इत्यादि उपदेश दिया, तब राजाने हाथ जोड़कर पूछा–हे प्रभु! रानीके प्रति मेरा अधिक स्नेह होनेका क्या कारण है? यह सुनकर श्री गुरुदेवने कहा–

राजा! सुनो, अवन्ती देशमें एक उज्जैन नामका नगर है वहां वीरसेन नामका राजा और रानी उसकी वीरमती थी। इसी नगरमें जिनदत्त नामक एक सेठ थे उसकी जयावती नाम सेठानीसे ईश्वरचंद्र नामका पुत्र भी था जो कि अपनी मामाकी पुत्री चंदनासे पाणिग्रहणका सुखसे कालक्षेप करता था।

एक समय सेठ जिनदत्त और सेठानी जयावती कुछ कारण पाकर दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण कर मुनि–आर्यिका हो गये। और तपके महात्म्यसे अपनी अपनी आयु पूर्ण कर स्वर्गमें देव–देवी हुए। और पिताका पद प्राप्त करके ईश्वरचंद सेठ भी चन्दना सहित सुखसे रहने लगा।

एक दिन अतिमुक्तक नामके मुनिराज मासोपवासके अनन्तर नगरमें पारणा निमित्त आये सो ईश्वरचंद्रने भक्ति सहित मुनिको पड़गाह कर अपनी स्त्रीसे कहा कि श्री गुरुको आहार देओ। तब चन्दना बोली–

****

स्वामी! मैं ऋतुवती हूँ, कैसे आहार दूं। ईश्वरचंदने कहा कि गुपचुप रहो, हल्ला मत करो, गुरुजी मासोपवासी हैं इसलिये शीघ्र पारणा कराओ।

चंदनाने पतिके वचनानुसार मुनिराजको आहार दे दिया सो श्री मुनिराज तो आहार करके वनमें चले गये और यहां तीन ही दिन पश्चात् इस गुप्त पापका उदय होनेसे पति पत्नी दोनों के शरीरमें गलित कुष्ट हो गया सो अत्यन्त दु:खी हुए और कष्टसे दिन बिताने लगे।

एक दिन भाग्योदयसे श्रीभद्र मुनिराज संघ सहित उद्यानमें पधारे सो नगरके लोग वन्दनाको गये, और ईश्वरचंद्र भी अपनी भार्या सहचंदना को गया, सो भक्ति पूर्वक नमस्कार कर बैठा और धर्मोपदेश सुना पश्चात् पूछने लगा–

हे दीनदयाल! हमारे यहां कौन पाप का उदय आया है कि जिससे यह विथा उत्पन्न हुई हैं। तब मुनिराजने कहा– तुमने गुप्त कपट कर पात्रदानके लोभसे अतिमुक्तक स्वामीको ऋतुवती होनेकी अवस्थामें भी आहार पान व मन, वचन, काय शुद्ध है कहकर आहार दिया है। अर्थात् तुमने अपवित्रता को भी पवित्र कहकर चारित्रका अपमान किया है सो इसी पापके कारणसे यह असातावेदनी कर्मका उदय आया है।

यह सुनकर उक्त दम्पति (सेठ सेठानीने) अपने अज्ञान कृत्य पर बहुत पश्चाताप किया और पूछा–

प्रभु! अब कोई उपाय इस पापसे मुक्त होने का बताइये तब श्री गुरुने कहा–हे भद्र! सुनो–आश्विन वदी षष्ठी (गुजराती भादों वदी ६) को चारो प्रकारके आहारका त्याग करके उपवास धारण करो तथा जिनालयमें जाकर पंचामृतसे अभिषेक

****

पूजन करो, अर्थात् छः प्रकारके उत्तम और प्रासुक फलों सहित अष्टद्रव्यसे छः अष्टक चढावो, अर्थात् छः पूजा करो। एकसौ आठ १०८ बार णमोकार मंत्रका फलों व फूलों द्वारा जाप करो, चारो संघको चार प्रकारका दान देवो।

इस प्रकार व्रत करो। तीनों काल सामायिक, व्रत, अभिषेक, पूजन करो, घरके आरंभ व विषयकषायोंका उपवासके दिन और रात्रिभर आठ प्रहर तथा धारणा पारणाके दिन ४ प्रहर ऐसे सोलह प्रहरों तक त्याग करो।

इस प्रकार छः वर्ष तक यह व्रत करो। पश्चात् उद्यापन करो अर्थात् जहां जिनमंदिर न हो वहां छः जिनालय बनवाओ, छः जिनबिंब पधरावो, छः जिनमंदिरोंका जीर्णोद्धार करावो, छः शास्त्रोंका प्रकाशन करो। छः छः सब प्रकारके उपकरण मंदिरमें चढाओ, छात्रोंको भोजन करावो। चार प्रकारके (आहार, औषध, शास्त्र और अभयदान) दान देवो।

इस प्रकार दंपतिने व्रत की विधि सुनकर मुनिराजकी साक्षीपूर्वक व्रत ग्रहण करके विधि सहित पालन किया। कुछ दिनमें अशुभ कर्मकी निर्जरा होनेसे उनका शरीर बिलकुल निरोग हो गया, और आयुके अन्तरमें सन्यास मरण करके ये दम्पति स्वर्गमें रत्नचूल और रत्नमाला नामक देव देवी हुए सो बहुत काल तक सुख भोगते और नन्दीश्वर आदि अकृत्रिम चैत्यालयोंको पूजा वन्दना करते कालक्षेप करते रहें।

अन्तमें आयु पूर्णकर वहाँसे चयकर तुम राजा हुए हो और यह रत्नमालादेवी तुम्हारी पट्टरानी पद्मिनी हुई हैं। सो यह तुम दोनोंका पूर्वभवोंका सम्बन्ध होनेसे ही प्रेम विशेष हुआ है। यह वार्ता सुनकर राजाको भवभोगोंसे वैराग्य उत्पन्न हुआ सो उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्रको राज्य देकर आपने दीक्षा ले

ली और घोर तपश्चरण किया और तपके प्रभावसे थोड़े ही कालमें केवलज्ञान प्राप्त करके वे सिद्ध पदको प्राप्त हुए, और रानी पद्मिनी जीवने भी दीक्षा ली, सो वह भी तपके प्रभावसे स्त्रीलिंग छेदकर सोलहवें स्वर्गमें देव हुआ वहांसे च्यवकर मनुष्य भव लेकर मोक्षपद प्राप्त करेगा।

इस प्रकार ईश्वरदत्त सेठ और चंदनाने इस चंदनषष्ठी व्रतके प्रभावसे नरसुरके सुख भोगकर मोक्ष प्राप्त किया और जो नरनारी यह व्रत पालेंगे वे भी अवश्य उत्तम पद पावें।

चन्दन षष्ठी व्रत करी, ईश्वरदत्त सुजान।
अरु तिस नारी चन्दना, पाया सुख महान॥

१३ श्री निर्दोष सप्तमी व्रत कथा

सहित आठ अरु बीस गुण, नमूं साधु निर्ग्रन्थ।
सप्तमी व्रत निर्दोषकी, कथा कहूं गुण ग्रन्थ॥

मगध देशके पाटलीपुत्र (पटना) नगरमें पृथ्वीपाल राजा राज्य करता था। उसकी रानीका नाम मदनावती था। उसी नगरमें अर्हदास नामका एक सेठ रहता था जिसकी लक्ष्मीमती नामकी स्त्री थी और एक दूसरा सेठ धनपति जिसकी स्त्रीका नाम नन्दनी था, नन्दनी सेठानीके मुरारी नामका एक पुत्र था, सो सांपके काटनेसे मर गया इसलिये नन्दनी तथा उसके घरके लोग अत्यन्त करुणाजनक विलाप करते थे अर्थात् सब ही शोकमें निमग्न थे।

नन्दनी तो बहुत शोकाकुल रहती थी। उसे ज्यों ज्यों समझाया जाता था त्यों त्यों अधिकाधिक शोक करती थी। एक दिन नन्दनीके रुदन (जिसमें पुत्रके गुणगान करती हुई रोती

थी) को सुनकर लक्ष्मीमती सेठानीने समझा कि नन्दनीके घर गायन हो रहा है, तब वह सोचने लगी कि नन्दनीके घर तो कोई मंगल कार्य नहीं हैं अर्थात् ब्याह व पुत्र जन्मादि उत्सव तो कुछ भी नहीं है तब किस कारण गायन हो रहा है? अच्छा चलकर पूछूं तो सही क्या बात है?

ऐसा विचार कर लक्ष्मीमती सहज स्वभावसे हंसती हुई नन्दनीके घर गई और नन्दनीसे हंसते हंसते पूछा–ऐ बहिन! तुम्हारे घर कोई मंगल कार्य है ऐसा तो सुना ही नहीं गया, तब यह गायन किस लिए होता रहता है, कृपया बताओ।

तब नन्दनी रीस करके बोली–अरी बाई! तुझे हंसीकी पड़ी है और मुझपर दुःखका पहाड़ टूट पड़ा है, मेरा कुलका दीपक प्यारा, आंखोंका तारा पुत्र सर्पके काटनेसे मर गया है, इसीसे मेरी नींद और भूख प्यास सब चली गई हैं, मुझे संसारमें अंधेरा लगता है।

दुःखियोंने दुःख रोया, सुखियोंने हंस दिया। मुझे रोना आता है और तुझे हंसना। जा जा! अपने घर। एक दिन तुझे भी अतुल दुःख आयेगा, तब जानेगी कि दूसरेका दुःख कैसा होता है?

इस पर लक्ष्मीमती अपने घर चली गई और नन्दनी उससे निःकारण वैरका सांप मंगाया, और एक घड़ेमें घर जाकर लक्ष्मीमतीके घर भिजवा दिया, और कहला दिया कि इस घड़ेमें सुन्दर हार रखा है सो तुम पहिरो।

नन्दनीका अभिप्राय था कि जब लक्ष्मीमती घड़ेमें हाथ डालेगी तो सांप इसे काटेगा और यह दुःखियोंकी हंसी करनेका फल पायेगी।

जब दासी लक्ष्मीमती के घर वह विषैला सांपका घड़ा लेकर गई और यथा योग्य सुश्रूषाके वचन कहकर घड़ा भेट कर दिया, तब लक्ष्मीमती दासीको पारितोषिक देकर विदा किया। और अपने घड़ेको उघाड़कर उसमेंसे हार निकालकर पहिर लिया। (लक्ष्मीमतीके पुण्यके प्रभावसे सांप का हार हो गया है) और हर्ष सहित जिनालयकी वन्दना निमित्त गई। सो मदनावती रानीने उसे देख लिया और राजासे लक्ष्मीमती जैसा हार मंगा देनेके लिये हठ करने लगी।

इसपर राजाने अर्हद्दास सेठको बुलाकर कहा—हे सेठ! जैसा हार तुम्हारी सेठानीका है वैसा ही रानीके लिये बनवा दो, और जो द्रव्य लगे भण्डारसे ले जाओ। तब अर्हद्दास श्रेष्ठिने सेठानीसे लेकर वही हार राजाको दिया, सो राजाके हाथ पहुँचते ही हारका पुनः सर्प हो गया।

इस प्रकार यह सांप अर्हद्दासके हाथमें हार और राजाके हाथमें सांप हो जाता था। यह देखकर राजा और सभाजन सभी आश्चर्ययुक्त हो हारका वृत्तांत पूछने लगे परंतु सेठ कुछ भी कारण न बता सका।

भाग्योदयसे वहां मुनि संघ आया सो राजा और प्रजा सभी वन्दनाको गये। वन्दना कर धर्मोपदेश सुना और अन्तमें राजाने यह हार और सांपवाली आश्चर्यकी बात पूछी तब मुनिराजने कहा—हे राजा! इस सेठने पूर्व भवमें निर्दोष सातमका व्रत किया है, उसीके पुण्य फलसे यह सांपका हार बन जाता है।

और तो बात ही क्या है, इस व्रतके फलसे स्वर्ग और अनुक्रमसे मोक्षपद भी प्राप्त होता है, और इस व्रतकी विधि इस प्रकार है सो सुनो—

भादो सुदी ७ को आवश्यक वस्त्रादि परिग्रह रख शेष समस्त आरम्भ व परिग्रहका त्याग करके श्री जिनमंदिरमें जावे और प्रभुका अभिषेक आरम्भ करे। अर्थात् वहां पर दूधका कुण्ड भरके उसमें प्रतिमा स्थापन करे, और पंचामृतका स्नान करानेके पश्चात् अष्टद्रव्यसे भाव सहित पूजन करे और स्वाध्याय करे।

इस प्रकार धर्मध्यानमें बितावे। पश्चात् दूसरे दिन हर्षोत्सव सहित जिनदेवका पूजन अर्चन करके अतिथिको भोजन कराकर और दीन दु:खियोंको यथावश्यक दान देकर आप भोजन करे। इस प्रकार सात वर्ष तक यह व्रत करके पश्चात् विधिपूर्वक उद्यापन करे और यदि उद्यापनकी शक्ति न हो, तो दूने वर्षों तक व्रत करे।

उद्यापन इस प्रकार करे—बारह प्रकारका पकवान और बारह प्रकारके फल तथा मेवा श्रावकोंको बांटे। बारह बारह कलश, झारी, झालर, चन्दोवा आदि समस्त उपकरण जिन मंदिरमें चढावे। बारह शास्त्र लिखाकर पधरावे और चतुर्विध दान करे।

राजाने यह सब व्रत विधान सुनकर स्वशक्ति अनुसार श्रद्धा सहित इस व्रतको पालन किया और अन्तमें आयु पूर्ण कर (समाधिमरण कर) सातवे स्वर्गमें देव हुआ। और भी जो भव्य जीव श्रद्धा सहित इस व्रतको पालेंगे तो वे भी उत्तमोत्तम सुखोंको प्राप्त होंगे।

नरपति पृथ्वी पाल अरु, अरदास गुणवान।
व्रत सातम निर्दोष कर लहो स्वर्ग सुखदान॥

(१४) श्री निःशल्य अष्टमी व्रत कथा

वन्दूं नेमि जिनेन्द्र पद, बाईसवें अवतार।
कथा निःशल्य आठम तनी, कहूँ सुखदातार॥

भरतक्षेत्रके आर्यखण्डमें सोरठ नामक देश है (वर्तमानमें काठियावाड कहते हैं) इस देशमें द्वारका नामकी सुन्दर नगरी है यहां पर श्री नेमिनाथ बाईसवें तीर्थंकरका जन्म हुआ था। जिस समय भगवान नेमिनाथ दीक्षा लेकर गिरनार पर्वत पर तपश्चरण करते थे और द्वारकामें श्री कृष्णचंद्रजी नवमें नारायण राज्य करते थे, ये त्रिखण्डी नारायण थे।

इनकी मुख्य पट्टरानी सत्यभामा थी सो सत्यभामाके द्वारा एक बार नारदका अपमान हुआ, इसपर नारद क्रोधवश इसे दण्ड देनेके अभिप्रायसे रुक्मिणी नामकी राजकन्यासे नारायणका विवाह कराकर सत्यभामाके सिरपर सौतका वास करा दिया। निःसंदेह सौतका स्त्रियोंको बहुत बड़ा दुःख होता है।

एक समय जब भगवान नेमिनाथको केवलज्ञान प्रगट हो गया तो श्री कृष्ण रानियों और पुरजनों सहित वन्दनाको गये और वन्दना करके धर्मोपदेश सुनकर अनन्तर रुक्मिणी नामक रानीके भवान्तर पूछे?

तब भगवानने कहा कि मगधदेशमें राजगृही नगर है वहां पर रूप और यौवनके मदसे पूर्ण एक लक्ष्मीमती नामकी ब्राह्मणी रहती थी।

एक दिन एक मुनिराज क्षीण शरीर दिगम्बर मुद्रायुक्त आहारके निमित्त इस नगरमें पधारे। उन्हें देखकर ब्राह्मणीने उनकी बहुत निन्दा की और दुर्वचन कहकर उपर थूंक दिया।

मुनि-निन्दाके कारणसे इसको त्रियंच आयुका बन्ध हो गया और उसी जन्ममें उसको कोढ़ आदि अनेक व्याधियां भी उत्पन्न हो गयी। पश्चात् वह आयुके अन्तमें कष्टसे मरकर भैंस हुई फिर मरकर सूकरी हुई, फिर कुत्ती हुई, फिर धीवरनी हुई। सो मछली मारकर आजिविका करती हुई जीवनकाल पूरा करने लगी।

एक दिन वटवृक्ष तले श्रीमुनि ध्यान लगाये तिष्ठे थे कि यह कुरूपा और दुष्ट चित्ता धीवरी जाल लिए हुए वहां आई और मछली पकड़नेके लिये नदीमें जाल डाला।

यह देख श्री गुरुने उसे दुष्ट कार्यसे रोका और उसके भवांतर सुनाकर कहा कि तू पूर्व पापके फलसे ऐसी दुःखी हुई है और अब भी जो पाप करेगी तो तेरी अत्यन्त दुर्गति होगी। इस धीवरीको मुनि द्वारा अपने भवांतर सुनकर मुर्छा आ गई। पश्चात् सचेत हो प्रार्थना करने लगी-हे नाथ! इस पापसे छूटनेका कोई उपाय हो तो बताइये।

तब श्री गुरुने दया करके सम्यग्दर्शन व श्रावकोंके पांच अणुव्रतों (अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह प्रमाण) का उपदेश दिया।

अष्टमूलगुण (पंच उदम्बर और तीन मकारोंका त्याग करना) धारण कराये, इस प्रकार वह धीवरी श्रावकके व्रत ग्रहण कर आयुके अंतमें समाधिमरण कर दक्षिण देशमें सुपारानगरके नन्दश्रेष्ठिके यहां नन्दा सेठानीके लक्ष्मीमती नामकी कन्या हुई। सो यद्यपि वह कन्या रूपवान तो थी तथापि अशुभ आचरणके कारण सभी उसकी निंदा करते थे।

****

एक समय उसी नगरके वनमें नंद मुनि पधारे। सब लोग मुनिके वन्दनाको गये। राजा आदि सभी जनोंने स्तुति वन्दना कर धर्मोपदेश सुना। पश्चात् नन्दश्रेष्ठिने पूछा–हे प्रभो! यह मेरी कन्या उत्तम रूपवान होकर भी अशुभ लक्षणोंसे युक्त है जिससे सभी इसकी निन्दा करते हैं।

तब श्री गुरुने कहा कि इसने पूर्व जन्ममें मुनिकी निंदा की थी जिससे भैंस, सूकरी, कूकरी, धीवरी आदि हुई। धीवरीके भयमें मुनिके उपदेशसे पंचाणु व्रत धारण करके सन्याससे मरी तो तेरे घर पुत्री हुई।

अभी इसके पूर्ण असाता कर्मका बिलकुल क्षय न होनेसे, ही ऐसी अवस्था हुई है सो यदि यह सम्यकपूर्वक निःशल्य अष्टमी व्रत पाले तो निःसंदेह इस पापसे छूट जायेगी।

इस व्रतकी विधि इस प्रकार है–

भादो सुदी अष्टमीको चारों प्रकारके आहारोंका त्याग करके श्री जिनालयमें जाकर प्रत्येक पहरमें अभिषेक पूर्वक पूजन करे। त्रिकाल सामायिक और रात्रिको जिन भजन करते हुए जागरण करे, पश्चात् नवमीको अभिषेकपूर्वक पूजन करके अतिथियोंको भोजन कराकर आप पारणा करे। चार प्रकारके संघको औषधि, शास्त्र, अभय और आहार दान देवे।

इस प्रकार यह व्रत सोलह वर्ष तक करके उद्यापन करे सोलह सोलह उपकरण मंदिरोंमें भेंट चढावे, अभिषेकपूर्वक विधान पूजन करे। कमसे कम सोलह श्रावकको मिष्टान भोजन प्रेमयुक्त हो करावे, दुःखित भुखितोंको करुणायुक्त दान देवे और चारो प्रकारके संघमें वात्सल्यभाव प्रकट करें। यदि उद्यापनकी शक्ति न होवे तो दूना व्रत करें।

* *

इस प्रकार इस श्रेष्ठि कन्याने विधि सुनकर यह व्रत धारण किया और विधियुक्त पालन भी किया, श्रावकके बारह व्रत अंगीकार किये तथा सम्यग्दर्शन जो कि सब व्रतों और धर्मोंका मूल है, धारण किया। व्रत पूर्ण होने पर उद्यापन किया और अन्त समयमें शीलश्री आर्यिकाके उपदेशसे चार प्रकारके आहारोंका त्याग तथा आर्त्त, रौद्र भावोंको छोड़कर समाधिमरण किया सो सोलहवें स्वर्गमें देवी हुई।

यहां पर पचपन पल्य (५५) तक नाना प्रकार सुख भोगे और आयु पूर्ण कर वहांसे चयी सो यह भीष्म राजाके यहां रुक्मिणी नामकी कन्या हुई है। अब अनुक्रमसे स्त्रीलिंग छेदकर परमपदको प्राप्त करेगी।

इस प्रकार रानी रुक्मिणी अपने भवांतर सुनकर संसार देह भोग से विरक्त हो सहर्ष राजमतीके निकट गयी और दीक्षा लेकर तपश्चरण करने लगी। सो वह अन्त समय सन्यास मरण कर स्वर्गमें देव हुई।

वहांसे आकर मनुष्य भव ले मोक्ष जावेगी इस प्रकार रुक्मिणीने व्रतके फलसे अपने पूर्वभवोंके समस्त पापोंको नाशकर उत्तम पद प्राप्त किया। और जो भव्य जीव श्रद्धा सहित इस व्रतको पालेंगे, वे इसी प्रकार उत्तमोत्तम सुखोंको प्राप्त करेंगे।

निःशल्यअष्टमी व्रत थकी, लक्ष्मीमती त्रिय सार।
सकल पापको नाशकर, पायो सुख अधिकार॥

****

(१५) श्री सुगन्ध दशमी व्रत कथा

वीतरागके पद प्रणमि, प्रणमि जिनेश्वर वान।
कथा सुगन्ध दशमीं तनी, कहूं परम सुखदान॥

जम्बूद्वीपके विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तरश्रेणीमें शिव मंदिर नामका एक नगर है। यहांका राजा प्रियंकर और रानी मनोरमा थी, सो ये अपने धन यौवन आदिके ऐश्वर्यमें मदोन्मत्त हुए जीवनके दिन पूरे करते थे। धर्म किसे कहते हैं, वह उन्हें मालूम भी न था।

एक समय सुगुप्त नामके मुनिराज कृश शरीर दिगम्बर मुद्रायुक्त आहारके निमित्त बस्तीमें आये उन्हें देखकर रानीने अत्यंत घृणापूर्वक उनकी निन्दा की और पानकी पिच मुनिपर थूंक दी। सो मुनि तो अन्तराय होनेके कारण बिना ही आहार लिये पीछे वनमें चले गये और कर्मोंकी विचित्रता पर विचार कर समभाव धारण कर ध्यानमें निमग्न हो गये।

परंतु थोडे दिन पश्चात् रानी मरकर गधी हुई फिर सूकरी हुई, फिर कूकरी हुई, फिर वहांसे मरकर मगध देशके वसंततिलक नगरमें विजयसेन राजाकी रानी चित्रलेखाकी दुर्गन्धा नामकी कन्या हुई। सो इसके शरीरसे अत्यन्त दुर्गन्ध निकला करती थी।

एक समय राजा अपनी सभामें बैठा था कि धनपालने आकर समाचार दिया कि हे राजन! आपके नगरके वनमें सागरसेन नामके मुनिराज चतुर्विध संघ सहित पधारे हैं।

यह समाचार सुनकर राजा प्रजा सहित वन्दनाको गया और भक्तिपूर्वक नतमस्तक हो राजाने स्तुति वन्दना की। पश्चात्

मुनि तथा श्रावकके धर्मोका उपदेश सुनकर सबने यथा शक्ति व्रतादिक लिये। किसीने केवल सम्यक्त्व ही अंगीकार किया। इस प्रकार उपदेश सुननेके अनन्तर राजाने नम्रतापूर्वक पूछा–

हे मुनिराज! यह मेरी कन्या दुर्गन्धा किस पापके उदयसे ऐसी हुई है सो कृपाकर कहिये। तब श्री गुरुने उसके पूर्व भवोंका समस्त वृत्तांत मुनिकी निन्दादिका कह सुनाया, जिसको सुनकर राजा और कन्या सभीको पश्चाताप हुआ। निदान राजाने पूछा–प्रभो! इस पापसे छूटनेका कौनसा उपाय है? तब श्री गुरुने कहा–

समस्त धर्मोका मूल सम्यग्दर्शन हैं, सो अर्हन्तदेव, निर्ग्रन्थ गुरु और जिनभाषित धर्ममें श्रद्धा करके उनके सिवाय अन्य रागी–द्वेषी देव–भेषी गुरु, हिंसामय धर्मका परित्याग कर अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह प्रमाण इन पांच व्रतोंका अंगीकार करे और सुगन्ध दशमीका व्रत पालन करे जिससे अशुभ कर्मका क्षय होवे।

इस व्रतकी विधि इस प्रकार है कि भादों सुदी दशमीके दिन चारों प्रकारके आहारोंका त्यागकर समस्त गृहारम्भका त्याग करे और परिग्रहका भी प्रमाणकर जिनालयमें जाकर श्री जिनेन्द्रकी भाव सहित अभिषेक पूर्वक पूजा करे। सामायिक स्वाध्याय करे। धर्म कथाके सिवाय अन्य विकथाओंका त्याग करे रात्रिमें भजनपूर्वक जागरण करे। पश्चात् दूसरे दिन चौबीस तीर्थंकरोंकी अभिषेकपूर्वक पूजा करके अतिथियों (मुनि व श्रावक) को भोजन कराकर आप पारणा करे। चारों प्रकार दान देवे। इस प्रकार दश वर्ष तक यह व्रत पालन कर पश्चात् उद्यापन करे।

अर्थात् चमर, छत्र, घण्टा, झारी, ध्वजा आदि दश दश उपकरण जिन मंदिरोंमें भेंट देवें और दश प्रकारके श्रीफल आदि फल दश धरके श्रावकोंको बांटे। यदि उद्यापनकी शक्ति न होवे, तो दूना व्रत करे।

उत्तम व्रत उपवास करनेसे, मध्यम काजी आहार और जघन्य एकासन करनेसे होता है।

इस प्रकार राजा प्रजा सबने व्रतकी विधि सुनकर अनुमोदना की और स्वस्थानको गये। दुर्गन्धा कन्याने मन, वचन, कायसे सम्यक्तपूर्वक व्रतको पालन किया। एक समय दसवें तीर्थंकर श्री शीतलनाथ भगवानके कल्याणकके समय देव तथा इन्द्रोंका आगमन देखकर उस दुर्गन्धा कन्याने निदान किया कि मेरा जन्म स्वर्गमें होवे, सो निदानके प्रभावसे यह राजकन्या स्वर्गमें अप्सरा हुई और उसका पिता राजा मरकर दसवें स्वर्गमें देव हुआ।

यह दुर्गन्धा कन्या अप्सराके भवसे आकर मगध देशके पृथ्वीतिलक नगरमें राजा महिपालकी रानी मदनसुन्दरीके मदनावती नामकी कन्या हुई, सो अत्यन्त रूपवान और सुगंधित शरीर हुई। और कौशाम्बी नगरीके राजा अरिदमनके पुत्र पुरुषोत्तमके साथ इस मदनावतीका ब्याह हुआ। इस प्रकार वे दम्पति सुखपूर्वक कालक्षेप करने लगे।

एक समय वनमें सुगुप्ताचार्य नामके आचार्य संघ सहित आये सो यह राजकुमार पुरुषोत्तम अपनी स्त्री सहित वन्दनाको गया तथा और भी नगरके लोग वन्दनाको गये सो स्तुति नमस्कार आदि करनेके अनन्तर श्री गुरुके मुखसे जीवादि तत्त्वोंका उपदेश सुना! पश्चात् पुरुषोत्तमने कहा–

****

हे स्वामी! मेरी यह मदनावती स्त्री किस कारणसे ऐसी रूपवान और अति सुगन्धित शरीर है? तब श्री गुरुने मदनावतीके पूर्व भवांतर कहे और सुगन्धदशमीके व्रतका महात्म्य बताया तो पुरुषोत्तम और मदनावती दोनों अपने भवांतरकी कथा सुनकर संसार देहभोगोंसे विरक्त हो दीक्षा लेकर तपश्चरण करने लगे।

इस प्रकार तपश्चरणके प्रभावसे मदनावती स्त्रीलिंग छेदकर सोलहवें स्वर्गमें देव हुई। वहां बाईस सागर सुखसे आयु पूर्ण करके अन्त समय चयकर मगध देशके वसुन्धा नगरीमें मकरकेतु राजाके यहां देवी पट्टरानीके कनककेतु नामका सुन्दर गुणवान पुत्र हुआ।

पिताके दीक्षा ले जाने पर कितनेक काल राज्य करके वह भी अपने मकरध्वज पुत्रको राज्य दे दीक्षा लेकर तपश्चरण करके और देश विदेशोंमें विहार करके अनेक जीवोंको धर्मके मार्गमें लगाने लगे। इस प्रकार कितनेक काल कनककेतु मुनिनाथको केवलज्ञान हुआ और बहुत काल तक उपदेशरूपी अमृतकी वृष्टि करके शेष अघाति कर्मोंका नाशकर परम पद मोक्षको प्राप्त हुए।

इस प्रकार सुगन्ध दशमीका व्रत पालकर दुर्गन्धा भी अनुक्रमसे मोक्ष प्राप्त हुई तो भव्य जीव यदि यह व्रत पाले तो अवश्य ही उत्तमोत्तम सुखोंको पावें।

सुगन्ध दशमी व्रत कियो, दुर्गन्धाने सार।
सुरनरने सुख भोगमें, अनुक्रम गई भव पार॥

****

१६ श्री जिनरात्रि व्रत कथा

वन्दूं ऋषभ जिनेन्द्र पद, माथ नाय हित हेत।
कथा कहूँ जिनरात्रि व्रत, अजर अमर पद देत॥

जब तीसरे कालका अन्त आया, तब क्रमसे कर्मभूमि प्रगट हुई और कल्पवृक्ष भी मन्द पड गये, ऐसे समयमें भोगभूमिके भोले जीव भूख प्यास आदि प्रकारके दु:खोंसे पीड़ित होने लगे।

तब कर्मभूमिकी रितियां बतलाने वाले १४ कुलकर (मनु) उत्पन्न हुए। उन्हींमें से १४ वें मनु श्री नाभिराज हुए। नाभिराजके मरुदेवी नाम शुभलक्षणा रानी थी। इसके पूर्व पुण्योदयसे तीर्थंकर पदधारी पुत्र ऋषभनाथका जन्म हुआ। ये ऋषभनाथ प्रथम तीर्थंकर थे, इसीसे इन्हें आदिनाथ भी कहते हैं।

आदिनाथने नन्दा, सुनन्दा नामकी दो स्त्रियोंसे ब्याह किया और उनसे भरत बाहुबली आदि १०१ पुत्र तथा ब्राह्मी और सुन्दरी दो कन्यायें हुईं। सो ये कन्याएं कुमार कालहीमें दीक्षा लेकर तप करने लगी।

इस प्रकार ऋषभदेवने बहुत काल तक राज्य किया। जब आयुका केवल चौरासीवां भाग अर्थात् १ लाख पूर्व शेष रह गया, तब इन्द्रने प्रभुको वैराग्य निमित्त लगाया। अर्थात् एक नीलांजना नामकी अप्सरा जिसकी आयु अल्प समय (कुछ मिनिटों) ही रह गई थी, प्रभुके सन्मुख नृत्य करनेको भेज दी। सो नृत्य करते करते अप्सरा वहांसे विलुप्त हो गई और उसी क्षण उसी पलमें वैसी अप्सरा ही आकर नृत्य करने लगी।

इस बातको सिवाय प्रभुके और सभाजन कोई भी न जान सके, परंतु प्रभु तो तीन ज्ञानसयुक्त थे, सो तुरंत ही उन्होंने जान लिया।

आप संसारकी क्षणभंगुर [illegible] द्वादशानुप्रेक्षाओंका चिंतवन करने लगे। उसी समय लोकांतिक देव आये, और प्रभुके वैराग्य भावोंकी सराहना करके उन्हें वैराग्यमें स्तुतिपूर्वक दृढ करके चले गये।

पश्चात् इन्द्रादि देवों व नरेन्द्रोंने उत्साहपूर्वक तप कल्याणकका समारोह किया। भगवान ऋषभनाथने सिद्धोंको नमस्कार करके स्वयं दीक्षा ली, और भक्तिवश उनके साथ १००० राजाओंने भी देखादेखी दीक्षा ले ली, सो दुर्द्धर तप करनेको असमर्थ होकर नाना प्रकारके भेष धारण कर ३६३ पाखण्ड मत चला दिए।

इन दीक्षा लेनेवालोंमें भरतजीका पुत्र मारीच भी था। सो जब केवलज्ञान हुआ और भरतजी उस समय वन्दनाको चले गये, और वन्दना करके मनुष्योंके कोठे (सभा) में बैठकर धर्मोपदेश सुनने लगे। धर्मोपदेश सुननेके अनन्तर भरतजीने पूछा-हे ऋषिनाथ! हमारे वंशमें और भी कोई आपके जैसा धर्मोपदेश प्रवर्तक अथवा चक्रवर्ती होगा? तब प्रभुने कहा-

मारीचका जीव नारायण होकर फिर तीर्थंकर भी होगा मारीच समवशरणमें ही बैठा था, सो यह बात सुनकर हर्षोन्मत्त हो दीक्षा त्याग करके वह अनेक प्रकारके पापकर्मोंमें प्रवृत्त हो गया, और पंचाग्नि तपकर अन्त समय प्राण छोडकर पांचवें स्वर्गमें देव हुआ।

वहांसे मिथ्यात्व अवस्थामें प्राण छोडकर अनेक त्रस स्थावर योनियोंमें जन्म मरण करनेके अनन्तर राजगृही नगरके राजा विश्वभूतिकी रानी जयंतिके विश्वनंदी नामका पुत्र हुआ। एक

****

समय विश्वभूति राजा कोई निमित्त पाकर वैराग्यको प्राप्त हो गये और अपने पुत्रको बालक जानकर अपने लघु भ्राता विशाखभूतिको राज्य और अपने पुत्र विश्वनंदिको युवराज पद देकर आप दीक्षा लेकर तप करने लगे।

युवराज विश्वनंदीने अपने मनोरंजनार्थ एक बाग तैयार कराया, सो उस बागमें नित्य प्रति अपना चितरंजन किया करता था।

वर्तमान राजा विशाखभूतिने बाग देखकर अत्यंत आश्चर्य किया। और इससे उनको विश्वनंदि पर द्वेषबुद्धि उत्पन्न हो गई। इसलिये उसने विश्वनंदिको किसी प्रकार यहांसे निकाल देनेका दृढ निश्चय कर लिया, और उसने युवराजको आज्ञा दी, कि तुम अमुक देश पर्यटन करनेके लिये जाओ। युवराज विश्वनंदि राजाज्ञासे देश परदेशको गया, और उसके क्रिडा करनेका जो बाग था सो राजाने स्वपुत्रको दे दिया।

कितनेक काल जब युवराज देश भ्रमणकर लौटा तो, अपने क्रिडा करनेका बाग अपने काकाके पुत्रके हाथोंमें गया जानकर कुपित हो उसे मारने के लिये चला। सो वह विशाखभूतिका पुत्र भयके मारे वृक्ष पर चढ गया।

विश्वनंदीने उस वृक्षको ही उखाड दिया। यह देखकर वह राजपुत्र युवराजके चरणोंमें मस्तक झुकाकर क्षमा मांगने लगा। युवराजने अपने भाईको क्षमा करके उठाया, और आप संसारको असार जानकर काका सहित दीक्षा ले ली। काका विशाखभूति बारह प्रकारके दूर्द्धर तप करके दशवें स्वर्गमें देव हुए।

युवराजने विश्वनंदि अनेक प्रकारके दूर्द्धर तप करते हुए मासोपवासके अन्तर भिक्षाके अर्थ नगरमें पधारे सो किसी पशुने उन्हें अपने सींगोंसे प्रहार कर भूमिपर गिरा दिया।

इस समय राजा विशाखनंदि अपने महलोंमें बैठा यह सब दृश्य देख रहा था सो अविचारी, मुनिका अपहास करके कहने लगा कि सब बल अब कहां गया? इत्यादि।

मुनिराज विशाखनंदी राजाके वचन सुनकर और अन्तराय हो जानेसे वनमें चले गये और उन्होंने निदान करके आयुको अन्तमें प्राण छोडकर दशवें स्वर्गमें देवपद प्राप्त किया।

कुछ कालके बाद विशाखनंदि भी दीक्षा ले, तप कर दशवें स्वर्गमें देव हुआ। सो ये दोनों देव देवोचित सुख भोगने लगे और अन्त समय वहांसे चयकर विशाखभूतिका जीव, सौरम्यदेश पोदनपुर नगरीके प्रजापति राजाकी मृगावती रानीके गर्भसे विश्वनंदिका जीव दसवें स्वर्गके चयकर त्रिपृष्ठ नामका नारायण पदधारी पुत्र हुआ।

रथनूपुरके राजा ज्वलनजटीकी प्रभावती नामकी कन्याके साथ नारायणका ब्याह हुआ। सो विशाखनंदिका जीव जो विजयार्द्धगिरिका राजा अश्वग्रीव प्रति नारायण हुआ था उक्त ब्याहका समाचार सुनकर बहुत कुपित हुआ। और बोला कि क्या ज्वलनजटीकी कन्या त्रिपृष्ठ जैसा रंक ब्याह कर सकता है? चलो, इस दुष्टको इसकी इस धृष्टताका फल चखावें।

यह विचारकर तुरन्त ही ससैन्य त्रिपुष्ठ राजा (जो कि होनहार नारायण थे) पर जा चढा, और घोर संग्राम आरम्भ कर दिया जिससे पृथ्वी पर हाहाकार मच गया परंतु अन्यायका फल भी अच्छा नहीं हुआ, न होगा।

अंतमें त्रिपृष्ठ नारायणकी ही विजय हुई और अश्वग्रीव अपने कियेका फल पाकर विशेष दुःख भोगनेको नर्कमें चला गया। क्या कोई किसीकी मांग या विवाहित स्त्रीको ले सकता है या लेकर सुखी हो सकता है।

****

देखो परस्त्रीकी इच्छा मात्रसे अश्वग्रीव प्रतिहर त्रिपृष्ठ द्वारा मारा गया और त्रिपृष्ठको नारायण पदका उदय हुआ सो संपूर्ण तीन खण्ड, विना ही प्रयास त्रिपृष्ठके हाथ आ गये। यर्थात् है, पुण्यसे क्या नहीं हो सकता है?

इस प्रकार कितनेक कालतक त्रिपृष्ठ नारायणने संसारके विविध प्रकारके सुख भोगे और अन्त समय रौद्रध्यानसे मरणकर सातवें नर्क गया। यहां ३३ सागर तक घोर दु:ख भोगकर निकला, सो सिंह हुआ। यहांसे अनेक जीवोंको मार मारकर खाया, जिससे घोर हिंसाके कारण मरकर पुन: प्रथम नरकमें गया।

यहांसे निकलकर पुन: सिंह हुआ। सो चारण मुनि अमितकिर्तिने उसे धर्मोपदेश देकर सम्बोधन किया। उस समय मुनिकी शांत मुद्रा और सरल उपदेशका उस सिंहपर बहुत बडा प्रभाव पडा। उसने हिंसा त्याग दी और अनशन व्रत धारण करके फाल्गुन वदी चतुर्दशीको प्राण त्यागकर प्रथम स्वर्गमें हरिध्वज नामका देव हुआ।

वह देव पुण्यके प्रभावसे अनेक प्रकारके सुख भोगता और निरन्तर धर्म सेवन करता हुआ वहांसे चयकर धातकी खण्ड द्वीपके सुमेरुगिरिके पूर्वदिशामें सीता नदीकी उत्तर दिशामें जो कक्षावती देश है उस देशकी हेमप्रभ नगरीमें कनकप्रभ नाम राजाकी कनकमाला पट्टरानीके गर्भसे हेमध्वज नामका पुत्र हुआ।

यह हेमध्वज राजा एक समय अकृत्रिम चैत्यालयोंकी वंदना स्तुतिकर धर्म श्रवण करनेके अनंतर अपने भवांतर पूछने लगा।

तब श्री गुरुने कहा तू इससे तीसरे भवमें सिंह था सो मुनिके उपदेशसे हिंसा त्याग कर जिन रात्रि व्रत धारण किया और अनशन व्रतके प्रभावसे प्रथम स्वर्गमें देव हुआ। अब वहांसे

चयकर तुम हेमध्वज नामका राजा हुआ। यह सुनकर राजाने व्रतकी विधि पूछी।

तब श्री गुरुने बताया कि फाल्गुन वदी १४ (गुजराती माघ वदी १४) को उपवास करे, श्री जिनालयमें जावें और पंचामृत अभिषेकपूर्वक अष्टद्रव्योंसे भगवानकी त्रिकाल पूजन सामायिक और स्वाध्याय करे। रात्रिको भी धर्मध्यानपूर्वक भजन व आराधना करें।

दूसरे दिन अतिथिको भोजन कराकर आप भोजन करें सुपात्रोंको चार प्रकारका दान देवे। इस प्रकार १४ वर्ष यह व्रत करके पश्चात् उद्यापन करें।

अतीत, अनागत और वर्तमान चौबीसीका विधान (पाठ) रचावे, चौदह ग्रंथ (शास्त्र) मंदिरोंमें पधरावे तथा अन्य उपकरण सब चौदह चौदह मंदिरोंमें भेट करें। कमसे कम चौदह श्रावक और चौदह श्राविकाओंको श्रद्धासे भक्तिपूर्वक सादर मिष्ठान्नादि भोजन करावे, नवीन वस्त्र पहिरावे, कुमकुमका तिलककर उनका भले प्रकार सम्मान करें। चौदह बिजौरा देवे। चतुर्विधि दान शालाएं खोले इत्यादि उत्सव करें और जो शक्ति न होवे तो दूना व्रत करे।

इस प्रकार राजा हेमध्वजने व्रतकी विधि सुनकर भक्तिभावसे व्रत धारण किया और उसे यथाविधि पालन भी किया। फिर अन्त समयमें जिन दीक्षा लेकर बारह प्रकारके तप करते हुए आयु पूर्ण कर आठवें स्वर्गमें देव हुआ।

वहांसे चयकर अवन्ती देशकी उज्जैन नगरीमें वज्रसेन राजाके सुशीला रानीके हरिषेण नामका पुत्र हुआ। सो योग्य वय होनेपर पंचाणुव्रत पालन करते हुए कितनेक काल तक राज्य किया। पश्चात् दीक्षा ले उग्र तप कर सन्यास पूर्वक प्राण त्याग कर दशवें स्वर्गमें देव हुआ।

यहांसे चयकर जम्बूद्वीपके पूर्वविदेहके कक्षावती देशकी क्षेमपुरी नगरीमें धनंजय राजाकी प्रभावती पट्टरानीसे प्रियमित्र नामका पुत्र हुआ। सो पुण्य फलसे चक्रवर्ती पदको प्राप्त हो षट्खण्डका राज्य कर अनेक सुख भोगे। पुन: जिनरात्रि व्रत किया और अन्त समय क्षेमंकर स्वामीके निकट दीक्षा लेकर दुर्द्धर तप किया। सो अंतमें आयु पूर्ण कर बारहवें स्वर्गमें सूर्यप्रभ देव हुआ।

यहांसे चयकर भरतक्षेत्रके श्वेतछत्रपुर नामके राजा नन्दिवर्द्धनकी वीरमती रानीके श्रीनंदन नामका पुत्र हुआ, सो प्रियंकर नाम राजकन्यासे ब्याह कर सानन्द रहने लगा.

पुन: जिनरात्रि व्रत किया और कितनेक काल राज्य कर अंतमें पुत्रको राज्य देकर आपने महाव्रत धारण किया और सोलह कारण भावना भायीं जिससे तीर्थंकर नाम कर्मप्रकृतिका बन्ध कर प्राण त्याग सोलहवें पुष्पोत्तर विमानमें देव हुआ। फिर वहांसे चयकर भरतक्षेत्रके आर्यखण्ड मगध देशकी कुण्डलपुर नगरीके राजा सिद्धार्थकी रानी त्रिशलादेवीके पंचकल्याणकोंके धारी श्री वर्द्धमान नामके चौवीसवे तीर्थंकर हुए। प्रभुका जन्म चैत्र सुदी त्रयोदशीको हुआ था।

आपने कुमार अवस्थामें ही मार्गशीर्ष वदी दशमीको दीक्षा धारण कर ली और बारह वर्ष घोर तपश्चरण करनेके अनन्तर वैशाख सुदी १० को केवलज्ञान प्राप्त किया और अनेक देशोंमें विहारकर धर्मोपदेश दे भव्य जीवोंको कल्याणका उपदेश दिया।

पश्चात् कार्तिक कृष्णा अमावस्याको प्रात:काल पावापुरीके वनसे शेष अघाति कर्मोंको भी नाश करके परम पद (मोक्ष) को प्राप्त किया।

इस प्रकार इस व्रतके प्रभावसे सिंह भी अनेक उत्तम भव लेकर अंतिम तीर्थंकर हो लोकपूज्य सिद्धपदको प्राप्त हुआ,

सो यदि अन्य भव्य जीव भाव सहित इस व्रतको पालन करे तो अवश्य ही उत्तम फलको प्राप्त होवेंगे।

पालन कर जिनरात्रि व्रत, सिंह भया इक जीव।
अनुक्रम तीर्थंकर भयो, पायो मोक्ष सदीव॥

१७ श्री जिनगुणसम्पत्ति व्रत कथा

वन्दूं आदि जिनेन्द्र पद, मन वच शीश नवाय।
जिनगुणसम्पत्ति व्रत कथा, कहूँ भव्य सुखदाय॥

घातकी खण्ड द्वीपके पूर्व मेरु संबन्धी–अपर विदेह क्षेत्रमें गांधिल देश और पाटलीपुत्र नामका नगर है। यहां नागदत्त नामका एक सेठ और उसकी सुमति नामकी सेठानी रहती थी सो निर्धन होनेके कारण अत्यन्त पीड़ित चित्त रहते और वनसे लकड़ीका भारा लाकर बेचते थे। इस प्रकार उदरपूर्ति करते थे। एक दिन वह सुमति सेठानी भूख–प्यास की वेदनासे व्याकुल होकर एक वृक्षके नीचे थककर बैठी थी कि–

इतने ही में क्या देखती है कि बहुतसे नरनारी अष्ट प्रकारकी पूजनकी द्रव्य लिये हुए बड़े उत्साहसे हर्ष सहित कहीं जा रहे हैं। तब सुमतिने आश्चर्यसे उन आगन्तुकोंसे पूछा–क्यों भाई! आप लोग कहां जा रहे हैं और काहेका उत्सव है?

तब उत्तर मिला कि अंबरतिलक पर्वत पर पिहताश्रव नामके केवली भगवान पधारे हैं और यह अष्ट प्रकारकी द्रव्य पूजार्थ लिये जाते हैं। सुमति सेठानी यह शुभ समाचार सुनकर सहर्ष सब लोगोंके साथ ही प्रभुकी वन्दनाके निमित्त चल दी।

इस प्रकार जब सब लोग पिहलाश्रव स्वामीके निकट पहूँचे तो मन, वचन, कायसे भक्तिपूर्वक भगवानकी वन्दना पूजा की, और फिर एकाग्र चित्त कर धर्मोपदेश सुननेके लिये बैठ गये।

स्वामीने देवपूजा, गुरुसेवा, स्वाध्याय, संयम, तप और दान इन गृहस्थके षट्कर्मोका उपदेश किया। पश्चात् अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य (स्वदार संतोष) और परिग्रहप्रमाण इन पंचाणुव्रतों तथा इनके रक्षक ४ शिक्षाव्रत और ३ गुणव्रत इन सात शीलोंको ऐसे बारह व्रतोंका उपदेश किया और सबसे प्रथम कर्तव्य सम्यग्दर्शनका स्वरुप समझाया।

इस प्रकार उपदेश सुनकर नरनारी अपने अपने स्थानको पीछे लौटे। तब सुमति सेठानी जो अत्यन्त दरिद्रतासे पीडित थी, अवसर पाकर श्री भगवानसे अपने दु:खकी वार्ता कहने लगी–

हे स्वामी! दीनबन्धु, दयासागर भगवान! मैं अबला दरिद्रतासे पीडित हो नीतांत व्याकुल हुई कष्ट पा रही हूँ। कौन कारणसे सम्पत्ति (लक्ष्मी) मुझसे दूर रहती हैं और वह कैसे मुझसे मिले, जिससे मेरा दु:ख दूर होकर मेरी प्रवृत्ति दान पूजादि रूप हो।

किसी कविने ठीक ही कहा है–'भूखे पेट न भक्ति होय धर्मा धर्म न सूझे कोय।' इसी कहावतके अनुसार अब सब लोग धर्मोपदेश सुन रहे थे, तब यह दरिद्र सुमति सेठानी अपने दारिद्य रूपी तत्त्वके विचारमें ही निमग्न थी जो कि अवसर मिलते ही झटसे कह सुनाया।

स्वामीने जिनकी दृष्टिमें राजा और रंक समान हैं। उस सेठानीसे चित्तको और प्रसन्न करने वाले शब्दोंमें इस प्रकार समझाया–

ऐ बेटी सुमति! सुन, पलासकूट नामक नगरमें दिथिलह नामक ग्रामपति रहता था। उसकी भार्या सुमती और पुत्री धनश्री रुप यौवन सम्पन्न थी।

एक समय धनश्री पांच सात सखियोंको लेकर वनक्रीडाके लिये नगरके उद्यानमें गई, जहांपर एक वृक्षके नीचे समाधिगुप्त नामके मुनिराज ध्यान कर रहे थे सो यह मदोन्मत्त धनश्री मुनिराजको देखकर निन्दायुक्त वचन कहने लगी और घृणाकर मुनिराजके ऊपर कुत्ते छोड दिये, इससे मुनिराजको बड़ा उपसर्ग हुआ, परंतु वे धीरवीर जिनगुरु अपने ध्यानसे किंचित्मात्र भी च्युत न हुए।

किन्तु इस महापापके कारण वह धनश्री मरकर सिंहनी हुई और सिंहनी मरकर तू धनहीन दरिद्रता नारी उत्पन्न हुई है। सो कोई मूढ नरनारी श्री गुरुको उपसर्ग करते हैं, वे ऐसी ही कथा इससे भी नीच गतिको प्राप्त होते हैं।

सुमति सेठानी अपने पूर्व भवांतर सुनकर बहुत दु:खी और पश्चाताप करके रोने लगी। पश्चात् कुछ धैर्य हुई धरकर हाथ जोडकर पूछने लगी–हे स्वामी! मेरा यह महापाप किस प्रकार छूटेगा?

तब भगवानने कहा कि यदि तू सम्यग्दर्शनपूर्वक जिनगुण सम्पत्ति व्रत पालन करे तो तेरा दु:ख दूर होकर मनवांछित कार्य सिद्ध होगा।

इस व्रतकी विधि इस प्रकार है कि प्रथम ही सोलहकारण भावनाएं जो तीर्थंकर प्रकृतिके आश्रवका कारण है, उनके १६, पंचपरमेष्ठिके पांच, अष्ट प्रातिहार्यके आठ और ३४ अतिशयोंके ३४, इस प्रकार कुल ६३ उपवास या प्रोषध करे। और इन उपवासके

दिनोंमें समस्त गृहारंभको त्याग कर श्री जिनेन्द्र भगवानका अभिषेक और पूजन विधान करे, दिनमें तीनवार सामायिक या स्वाध्याय करे और उद्यापनकी शक्ति न होवे तो दूना व्रत करे।

उद्यापनकी विधि निम्न प्रकार है–आम, जाम, केला, नारंगी, बिजौरा, श्रीफल, अखरोट, खारक, बादाम, द्राक्ष इत्यादि प्रत्येक प्रकारके ६३ त्रेसठ फल और भांति–भांतिके उत्तम पकवानों सहित अष्ट द्रव्यसे भगवानकी महाभिषेकपूर्वक पूजन करे, और जिनालयमें चन्दोवा, चंवर, छत्र, झालर घण्टादि उपकरण भेंट करे, तथा त्रेसठ ग्रंथ लिखाकर श्रावक श्राविकाओंमें ज्ञानावरण कर्मके क्षय होनेके लिए बांटे व जिनालयके सरस्वती भंडारमें ग्रंथ पधरावे, खूब उत्सव करे, अतिथियोंको भोजन देवे व दीन दुःखीका यथा सम्भव दुःख दूर करे, इत्यादि।

सुमति सेठानी इस प्रकार व्रतकी विधि सुनकर घर आई और श्रद्धा सहित यह व्रत पालन करके शक्ति अनुसार उद्यापन भी किया, सो आयुके अंतमें सन्यास मरण करके दूसरे स्वर्गमें ललितांग देवको पट्टरानी देवी हुई।

पुण्यके प्रभावसे यह स्वयंप्रभा देवी नाना प्रकारके सुखोंको भोगती हुई। पश्चात् आयु पूर्णकर वहांसे चयकर इसी जम्बूद्वीपके पूर्वविदेह सम्बन्धी पुष्कलावती देशकी पुण्डरीकनी नगरीसें वज्रदत्त चक्रवर्तीके लक्ष्मीमती नामकी रानीके गर्भसे श्रीमती नामकी पुत्री हुई, सो वजजंघ राजाके साथ ब्याही गई।

एक दिन ये दम्पति वनक्रीडाको गये थे, सो वहां सर्पसरोवरके तटपर आये हुए चारण मुनिको आहार दान दिया और मुनि दानके प्रभावसे ये दम्पति भोगभूमिमें उत्पन्न हुए। फिर वहांसे चयकर श्रीमतीके जीवने जम्बूद्वीप अवतार लेकर

आर्यिकाके व्रत धारण किये और सन्याससपूर्वक मरण कर स्त्रीलिंग छेदकर दूसरे स्वर्गमें देव हुआ।

फिर वहांसे चयकर जम्बूद्वीपके पूर्वविदेह वत्सकावती देशकी सुसीमा नगरीमें सुबुधि नाम राजाकी मनोरमा रानीके केशव नाम पुत्र हुआ, सो उसने बहुत काल तक अपने पिता द्वारा प्रदत्त राज्य सुख न्यायनीतिपूर्वक भोगे। पश्चात् कारण पाय वैराग्यको प्राप्त हुआ और श्रीमन्धरस्वामीके निकट जिन दीक्षा धारण करके दुर्द्धर तपश्चरण किया। सो तपके प्रभावसे सन्यास मरणकर सोलहवें स्वर्गमें देव हुआ।

वहांसे बावीस सागरकी आयु सुखके पूर्ण करके चया सो जम्बूद्वीपके विदेह क्षेत्रमें पुष्पकलावती देशकी पुण्डरीकनी नगरीमें कुबेरदत्त सेठकी अनन्तमती सेठानीके धनदेव नामका पुत्र (चक्रवर्ती भण्डारी) हुआ।

एक दिन वह धनदेव चक्रवर्तीके साथ मुनिराजकी वन्दनाको गया, स्वामीका उपदेश सुनकर उसने वैराग्यको प्राप्त होकर जिनदीक्षा धारण की और तप करके सन्यास मरण कर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिंद्र हुआ।

फिर वहांसे चयकर भरतक्षेत्रके कुरुजांगल देशकी हस्तिनापुर नगरीमें श्रेयांस नामका राजा हुआ सो कितनेक काल राज्यसुख भोगे पश्चात् श्री ऋषभदेव भगवानको आहार दान दिया, जिसके कारण दानियोंमें प्रसिद्ध प्रथम दानवीर कहलाया, जिसकी कथा आज तक प्रख्यात है और लोग उस दानके दिन (वैशाख सुदी ३) को अक्षय तृतीया या अखातीज कहते हैं और उत्सव मनाते हैं क्योंकि सबसे प्रथम दानकी प्रथा इन्हींके द्वारा प्रचलित हुई है।

****

पश्चात् ये प्रसिद्ध दानी राजा श्रेयांस भगवान ऋषभदेवके मुखसे धर्मोपदेश सुनकर जिन दीक्षा लेकर तप करने लगे और अपने शुक्ल ध्यानके प्रभावसे केवलज्ञानको प्राप्त होकर मोक्षपद प्राप्त किया। इस प्रकार सुमति नामकी दरिद्र सेठानीने जिनगुणसम्पत्ति व्रत सम्यग्दर्शन सहित पालन कर अनुक्रमसे मोक्षपद प्राप्त किया तो और भव्य जीव यदि इस व्रतको पालें तो क्यों नहीं उत्तम फल पावेंगे? अवश्य ही पावेंगे।

जिनगुण सम्पत्ति व्रत करो, सुमति वणिक नर नार।
नर सुरके सुख भोगकर, फेर हुई भव पार॥

(१८) श्री मेघमाला व्रत कथा

महावीर पद प्रणमि कर, गौतम गुरु सिर नाय।
कथा मेघमाला तनी, कहूं सबहि सुखदाय॥

वत्सदेश कौशाम्बीपुरीमें जब राजा भूपाल राज्य करते थे, तब वहां पर एक वत्सराज नामका श्रेष्ठि (सेठ) और उसकी सेठानी पद्मश्री नामकी रहती थी। सो पूर्वकृत अशुभ कर्मके उदयसे उस सेठके घरमें दरिद्रताका वास रहा करता था इस पर भी इसके सोलह (१६) पुत्र और बारह (१२) कन्याएं थीं।

गरीबीकी अवस्थामें इतने बालकोंका लालन-पालन करना और गृहस्थीका खर्च चलाना कैसा कठिन हो जाता है, इसका अनुभव उन्हींको होता है जिन्हें कभी ऐसा प्रसंग आया हो या जिन्होंने अपने आसपास रहनेवाले दीन दु:खियोंकी ओर कभी अपनी दृष्टि डाली हो। पर स्नेह करने वाले मातापिता ही ऐसे समयमें अपने प्यारे

बालकोंको अनुचित और कठोर शब्दोंमें केवल सम्बोधन ही नहीं करने लगते हैं। किन्तु उन्हें बिना मूल्य या मूल्यमें बेच तक देते हैं।

प्राणोंसे प्यारी संतान कि जिसके लिए संसारके अनेकानेक मनुष्य लालायित रहते हैं और अनेक यंत्र मंत्रादि कराया करते हैं। हाय, उस दरिद्रावस्थामें वह भी भाररूप हो पडती है। वत्सराज सेठ इसी चिंतामें चिंतित रहता था।

जब ये बालक क्षुधातुर होकर मातासे भोजन मांगते तो माता कठोरतासे कह देती--जाओ मरो, लंघन करो, चाहें भीख मांगो तुम्हारे लिये मैं कहांसे भोजन दे दूं? यहां क्या रखा है जो दे दूं? सो ये नन्हें नन्हें बालक झिडकी खाकर जब पिताजीके पास जाते, तब वहांसे भी निराश ही पल्ले पडती। हाय, उस समयका करुणा क्रन्दन किसके ह्रदयको विदीर्ण नहीं कर देता है।

एक दिन भाग्योदयसे एक चारण ऋद्धिधारी मुनि वहां आये। उन्हें देखकर वत्सराज सेठने भक्तिसहित पडगाहा और घरमें जो रूखासूखा भोजन शुद्धतासे तैयार किया गया था, सो भक्ति सहित मुनिराजको दिया।

मुनिराज उस भक्तिपूर्वक दिये हुए स्वाद रहित भोजनको लेकर वनकी ओर सिधार गये। तत्पश्चात् सेठ भी भोजन करके जहां श्री मुनिराज पधारे, वहां खोजते खोजते पहूँचा और भक्तिपूर्वक वंदना करके बैठा। श्री गुरुने इस सम्यक्तादि धर्मका उपदेश दिया।

पश्चात् सेठने पूछा–हे दयानिधि! मेरे दरिद्रता होनेका कारण क्या है? और अब यह कैसे दूर हो सकती हैं?

तब श्री गुरु बोले–ए वत्स, सुनो! कौशल देशकी अयोध्या नगरीमें देवदत्त नामक सेठकी देवदत्ता नामकी सेठानी रहती थी। वह धन, कण और रूप लावण्य कर संयुक्त तो थी

****

परंतु कृपण होनेके कारण दान धर्ममें धन लगाना तो दूर ही रहे किंतु उल्टा दूसरेका धन हरण करनेको तत्पर रहती थी।

एक दिन कहींसे एक गृहत्यागी ब्रह्मचारी जो अत्यन्त हीन शरीर था। सो भोजनके निमित्त उसके घर आ गये। उसे देख सेठानीने अनेक दुर्वचन कहकर निकाल दिया। वह कृपणा कहने लगी–अरे, जा जा, यहांसे निकल, यहां तो घरके बच्चे भूखों मर रहे हैं, फिर दान कहांसे करें? जो चाहे सो यही ही चला आता है।

इतने हीमें उसका स्वामी सेठ भी आ गया और उसने अपनी स्त्रीकी हां में हां मिला दी। निदान कुछेक दिनोंमें यही हुआ, जैसी मनसा वैसी दशा हो गई। अर्थात् उसका सब धन चला गया और वे यथार्थमें भूखों मरने लगे। अति तीव्र पापका फल कभी कभी प्रत्यक्ष ही दीख जाता है।

ये सेठ सेठानी आर्त ध्यानसे मरे सो एक ब्राह्मणके घर महिष (भैंस) के पुत्र (पाडा–पाडी) हुए। सो वहां भी भूख प्यासकी वेदनासे पीडित हो पानी पीनेके लिए एक सरोवरमें घुसे थे कि कीच (कादव) में फंस गये और जब तडफडाकर मरणोन्मुख हो रहे थे, उसी दयाल श्रावकने आकर उन्हें णमोकार मंत्र सुनाया और मिष्ट शब्दोंमें संबोधन किया।

सो ये पाडा–पाडी वहांसे मरकर णमोकार मंत्रके प्रभावसे तुम मनुष्य भवको प्राप्त हुए, परंतु पूर्व संचित पापकर्मोंका शेषांश रह जानेसे अब तक दरिद्रताने तुम्हारा पीछा नहीं छोडा है।

ऐ वत्स! यह दान न देने और यति आदि महात्माओंसे घृणा करनेका फल हैं। इसलिए प्रत्येक गृहस्थको सदैव यथाशक्ति दान धर्ममें अवश्य ही प्रवर्तना चाहिये।

अब तुम सत्यार्थ देव अर्हंत, गुरु निर्ग्रंथ और दयामयी धर्ममें श्रद्धान करो और श्रद्धापूर्वक मेघमाला व्रतका पालन करो तो सब प्रकार इस लोक और परलोक संबंधी सुखोंको प्राप्त होवेंगे।

यह व्रत भादों सुदी प्रतिपदासे लेकर आश्विन सुदी प्रतिपदा तक प्रति वर्ष एक एक मास करके पांच वर्ष तक किया जाता है अर्थात् भादों सुदी पडिमासे आसोज सुदी पडिमा तक (एक मास) श्री जिनालयके आंगणमें (चौकमें) सिंहासनादि स्थापन करे और उस पर श्री जिनबिंब स्थापन करके महाभिषेक और पूजन नित्य प्रति करे, श्वेत वस्त्र पहिने, श्वेत ही चंदोवा बंधावे मेघ धाराके समान १००८ कलशोंसे महाभिषेक करके पश्चात् पूजा करे।

पांच परमेष्ठिका १०८ बार जाप करे पश्चात् संगीतपूर्वक जागरण भजन इत्यादि करे। भूमिशयन व ब्रह्मचर्य व्रत पालन करे। यथाशक्ति चारो प्रकार दान देवे, हिंसादि पांच पापोंका त्याग करे तथा एक मास पर्यन्त ब्रह्मचर्यपूर्वक एक भुक्त उपवास, बेला तेला आदि शक्ति प्रमाण करे। निरन्तर षट्रसी व्रत पाले अर्थात् नित्य एक रस छोडकर भोजन करे।

इस प्रकार जब पांच वर्ष पूर्ण हो जावें तब शक्ति प्रमाण भाव सहित उद्यापन करे अर्थात् पांच जिनबिंबोंकी प्रतिष्ठा करावे पांच महान ग्रंथ लिखावे, पांच प्रकार पकवान बनाकर श्रावकोंके पांच घर देवे। पांच पांच घण्टा, झालर, चंदोवा, चमर, छत्र, अछार आदि उपकरण देवे। पांच श्रावकों (विद्यार्थियों) को भोजन करावे, सरस्वतीभवन बनावे, पाठशाला चलावे इत्यादि और अनेकों प्रभावना बढाने वाले कार्य करे।

****

इस प्रकार व्रतकी विधि सुनकर सेठ सेठानी श्रद्धापूर्वक इस व्रतको पालन किया, सो व्रतके प्रभावसे उनका सब दारिद्रय दूर हो गया और ये स्त्री-पुरुष सुखसे काल व्यतीत करते हुए आयुके अंतमें सन्यासपूर्वक मरण कर दूसरे स्वर्गमें देव हुए।

फिर वहांसे चयकर ये पोदनपुरमें विजयभद्र नामके राजा और विजयावती नामकी रानी हुई, सो पूर्ण पुण्यके प्रभावसे धन, धान्य, पुत्र, पौत्रादि सम्पत्तिके अधिकारी हुए।

आयुके अंतिम भाग (वृद्धावस्था) में दोनों राजा और रानी अपने पुत्रको राज्यका अधिकार देकर आप जिनेश्वरी दीक्षा ले तप करने लगे सो तपके प्रभावसे आयु पूर्णकर राजा तो सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिन्द्र हुआ और रानी भी स्त्रीलिंग छेदकर सोलहवें स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुई। वहांसे चयकर ये दोनों प्राणी मोक्ष पद प्राप्त करेंगे।

इस प्रकार मेघमाला व्रतके प्रभावसे देवदत्त और देवदत्ता नामके कृपण सेठ और सेठानी भी मोक्ष पद पावेंगे सो यदि और नरनारी श्रद्धासहित यह व्रत पालें तो अवश्य उत्तम फल पावेंगे।

मेघमाला व्रत धारकर, सेठ सेठानी सार।
लहो स्वर्ग अरु लहैंगे, मोक्ष सुख अधिकार॥

(११) श्री लब्धिविधान व्रत कथा

प्रथम नमूं जिन वीर पद, पुनि गुरु गौतम पाय।
लब्धि विधान कथा कहूँ, शारद होहु सहाय॥

काशी देशमें वाराणसी नामकी नगरीका महाप्रतापी विश्वसेन राजा था। उसकी रानीका नाम विशालनयना था, एक दिन राजाने कौतुकपूर्ण हृदयसे नाटकका खेल करवाया। नाटकके पात्रोंने राजाको प्रसन्नतार्थ अनेक प्रकार गीत, नृत्य, आल्हाद, विस्मयादिक पूर्वक नाटकका खेल खेलना आरम्भ कर दिया, सो राजा रानी और सब पुरजन अपने योग्य आसनों पर बैठकर सहर्ष अभिनय देखने लगे।

उन नाटकका पात्रोंके विविध भेष और हावभावोंसे रानीका चित्त चंचल हो उठा, और वह चमरी और रंगो नामकी अपनी दो सखियों सहित घरसे निकल पडी। तथा कुसंगमें पडकर अपना शीलधर्मरूपी भूषण खो बैठी। वह ग्रामोग्राम भ्रमण करती हुई वेश्या कर्म करने लगी।

जीवोंके भाव तथा कर्मोंकी गति विचित्र है। देखो रानी, रनवासके सुख छोडकर गली गलीकी कुत्ती हो गई। सत्य है, इन नाटकोंसे कितने घर नहीं उजडे? रानी जैसीको यह दशा हुई तो अन्य जनोंका कहना ही क्या है?

राजा भी अपनी प्रियतमाके वियोगजनित दु:खको न सह सकनेके कारण पुत्रको राज्य देकर वनमें चला गया। और इष्टवियोग (आर्तध्यान) से मरकर हाथी हुआ, सो वनमें भटकते भटकते एक समय किसी पुण्य संयोगसे श्री मुनिराजका दर्शन हो गया और धर्मबोध भी मिला, जिसे वह हाथी सम्यक्त्वको प्राप्त

****

करके अणुव्रत पालन करने लगा। और आयुके अंतमें चया, पाटलीपुत्रनगरमें महीचंद्र नामका राजा हुआ।

यह महीचंद राजा एक दिन वनक्रीड़ाको गया था। इसके पुण्योदयसे वहां (उद्यानमें) श्री मुनिराजके दर्शन हो गये। तब सविनय साष्टांग नमस्कार करके राजा धर्मश्रवणकी इच्छासे वहां बैठ गया। इतनेमें कानी, कुबड़ी और कोढ़ी ऐसी तीन कन्याएं अत्यन्त दुःखित हुई वहां आईं। उन्हें देखकर राजा महीचंद्रको मोह उत्पन्न हुआ, तब राजाने श्री गुरुसे अपने मोह उत्पन्न होनेका कारण पूछा–

तब श्री गुरुने इनके भवांतरका संबंध कह सुनाया कि राजन्! तू अबसे तीसरे भवमें बनारसका राजा विश्वसेन था और रानी तेरी विशालनयना थी, सो नाटकका अभिनय देखते हुए नाटककार पात्रोंके हावभावोंसे चंचलित होकर तेरी रानी अपनी रंगी और चमरी नामकी दो दासियों सहित निकल कर कुपथगामिनी हो गई।

सो ये तीनों वैश्याकर्म करती हुई एक समय किसी राजाके पास कुछ याचनाको जा रही थी कि रास्तेमें परम दिगम्बर मुनिराजको देखकर अपने कार्यके साधनमें अपशुकन मानने लगी और रात्रि समय मुनिराजके पास आकर अपने घृणित स्वभावानुसार हावभाव दिखाने और मुनिराजके ध्यानमें विघ्न करने लगी, परंतु जैसे कोई धूल फेंककर सूर्यको मलीन नहीं कर सकता है, उसी प्रकारसे वे कुलटाएं श्री मुनिराजको किंचित् भी ध्यानसे न चला सकीं। सत्य है क्या प्रलयकी पवन कभी अचल सुमेरुको चला सकती है?

स्त्री चरित्रके साथ साथ स्त्रियोंकी प्यारी रात्रि भी पूर्ण हुई। प्रातःकाल हुआ। सूर्य उदय होते ही वे दुष्टनी विफल–मनोरथ होकर वहांसे चली गयी और यहां मुनिराजके निश्चल ध्यानके कारण देवोंने जय जयकार शब्द करके पंचाश्चर्य किये।

निदान ये तीनों मुनिको उपसर्ग करनेके कारण गलित कोढ़को प्राप्त हुई, रूप, कला, सौन्दर्य सब नष्ट हो गया, और आयुके अंतमें मरकर पांचवें नरक गई। बहुत काल तक वहांसे दुःख भोगकर उज्जैनीके पास ग्रामपलाश नामके एक गृहस्थकी पुत्रियां हुई हैं, सो छोटी अवस्थामें माता पिता मर गये।

पूर्व पापके कारण ये तीनों प्रथम कुरुपा कानी, कुबडी, कोढ़ी और तिसपर भी भूंड वचन बोलनेवाली है, इसलिये ग्रामसे बाहर निकाल दी गई है। वहांसे भटकती हुई यहां आई हैं और तू अपनी पट्टरानीके वियोगसे दुःखित होकर मरा, सो हाथी हुआ, तब श्री मुनिराजके उपदेशसे सम्यक्त्व सहित पंचाणुव्रत पालन करके मरा, सो स्वर्गमें देव हुआ। और देव पर्यायसे आकर यहां महीचंद्र नामका राजा हुआ है। सो इनका तेरा पूर्वजन्मोंका संबंध होनेसे तुझे यह मोह हुआ है।

तब राजाने कहा—महाराज! क्या कोई उपाय ऐसा है कि जिससे ये कन्यायें पापोंसे छूटे?

तब श्री गुरुने कहा—राजन! सुनो, यदि ये श्रद्धापूर्वक लब्धिविधान व्रत करें तो सहज ही इस पापसे छूटकारा पायेंगी। इस व्रतकी विधि इस प्रकार है—

भादो, माघ और चैत्र सुदी एकमसे तीज तक यह व्रत एक वर्षमें ऐसे ५ वर्ष तक करें। पश्चात् उद्यापन करें अथवा दुगुना व्रत करे। व्रतके दिनोंमें या तो तेला करे या एकांतर उपवास करे या एकासना ही नित्य करें। और श्री महावीर स्वामीकी प्रतिमाका पंचामृताभिषेकपूर्वक पूजनार्चन करें।

तीनों काल सामायिक करें—'ॐ ह्रीं महावीरस्वामीने नमः' यह १०८ जाप करें। जागरण और भजन करें।

उद्यापनकी विधि--जब व्रत पूर्ण हो जावे, तब सकल संघको भोजन करावे, और संघमें चार प्रकारका दान करें। शास्त्रोंका प्रचार करें, पूजनके उपकरण व शास्त्र भी जिनालयमें पधरावें इत्यादि।

इस प्रकार व्रतकी विधि और फल सुनकर उन तीनों कन्याओंने राजाकी सहायतासे व्रत पालन किया। और समाधिमरण कर पांचवें स्वर्गमें देव हुईं। राजा महीचंद्र भी दीक्षा धर तप करके स्वर्ग गया।

विशालनयना नाम रानीका जीव जो देव हुआ था, सो मगधदेशके वाडवनगरमें काश्यप गौत्रीय सांडिल्य नाम ब्राह्मणकी सांडिल्या स्त्रीके गौतम नामका पुत्र हुआ था तथा चमरी व रंगीके जीव भी देव पर्यायसे चयकर मनुष्य हो तप कर उत्तम गतिको प्राप्त हुए।

जब श्री महावीर भगवानको केवलज्ञान हुआ परंतु वाणी नहीं खीरी इसका कारण इन्द्रने जाना कि गणधर बिना वाणी नहीं खिरती है, सो इन्द्र गौतम ब्राह्मणके पास 'त्रैकाल्यं द्रव्य षटकं' इत्यादि नवीन श्लोक बनाकर साधारण भेषमें गया और उसका अर्थ पूछा–

जब गौतम उसका अर्थ लगानेमें गडबडाया तब इन्द्र उसे भगवानके समवशरणमें ले आया, सो मानस्तम्भ देखते ही गौतमका मान भंग हो गया और उन्होंने प्रभुके सम्मुख जाकर नमस्कार करके दीक्षा ली। सो जिनकथित चारित्रके प्रभावसे उसे चारों ज्ञान हो गया और वह भगवानके गणधरोंमें प्रथम गणधर हुए, कितनेक काल जीवोंको संबोधन किया और महावीर प्रभुके पश्चात् केवलज्ञान प्राप्त करके निर्वाणपदकी प्राप्ति हुआ। उन गौतमस्वामीको हमारा नमस्कार हो।

लब्धि विधान व्रत फल थकी, विशालनयना नार।
गणधर हो लह मोक्षपद, किये कर्म सब क्षार॥

२० श्री मौन एकादशी व्रत कथा

घाति घात केवल लहो, लहो चतुष्क अनंत।
सरल मोक्ष मग जिन कियो, वन्दूं सो अर्हंत॥

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें कौशल्य देश हैं। उसमें यमुना नदीके किनारे कौशांबी नामकी नगरी हैं, इसी नगरमें परमपूज्य छठवें तीर्थंकर श्री पद्मप्रभुका जन्मकल्याणक हुआ था। एक समय इसी नगरमें हरिवाहन नामका राजा और उसकी शशिप्रभा पट्टरानी थी।

राजपुत्रका नाम सुकौशल था। यह राजकुमार सर्व विद्या और कलाओंमें निपूण होने पर भी निरन्तर खेल तमाशों आदि क्रीडाओंमें निमग्न रहता था। और राजकाजकी ओर बिलकुल भी ध्यान न देता था। इसलिये राजाको निरन्तर चिंता रहने लगी कि राजपुत्र राज्यकार्यमें योग नहीं देता है, तब भविष्यमें कार्य कैसा चलेगा?

एक समय भाग्योदयमें सोमप्रभ नामके महामुनिराज संघ सहित विहार करते हुए इसी नगरमें उद्यानमें पधारे। राजाने वनमाली द्वारा ये शुभ समाचार सुनकर पुरवासियों सहित हर्षित होकर श्री गुरुके दर्शनोंको प्रयाण किया। और वहां पहुंचकर भक्तिभावसे वंदना स्तुति करके धर्मश्रवणकी इच्छासे नतमस्तक होकर बैठ गया।

श्री गुरुने प्रथम मिथ्यात्वके छुडानेवाले और संसारमें भय उत्पन्न करानेवाले ऐसे मोक्षमार्गका व्याख्यान सुनाया, मुनि और श्रावकके धर्मको पृथक्कर करके समझाया और यह भी परम्परा मोक्षका कारण समझना चाहिए। यथार्थमें तो भव्य जीवोंको मुनिधर्म ही पालन करना चाहिए, परंतु यदि शक्तिहीनताके कारण एकाएक मुनिधर्म न धारण कर सकें, तो कमसे कम

प्रतिमारूप श्रावकका धर्म ही धारण करे। और निरन्तर अपने भावोंको बढाता और शरीरादि इन्द्रियों तथा मनको वश करता जाये, तब ही अभीष्ट सुखको प्राप्त हो सकता है।

श्रावक धर्म केवल अभ्यास ही के लिये है। इसलिये इसीमें रंजायमान होकर इति नहीं कर देना चाहिए। किन्तु मुनिधर्मको भावना भाते हुए उसके लिये तत्पर रहना चाहिए।

राजाने उपदेश सुन स्वशक्ति अनुसार व्रत धारण किया और विशेष बातोंका श्रद्धान किया। पश्चात् अवसर देखकर पूछने लगे—हे नाथ! मेरा पुत्र विद्यादिमें निपुण होने पर भी बालक्रीडाओंमें अनुरक्त रहता हैं और राज्यभोगमें कुछ भी नहीं समझता है। अत: इसकी चिंता है कि भविष्यमें राज्यस्थिति कैसे रहेगी?

राजाका प्रश्न सुनकर श्री गुरुने कहा—इसी देशके कूट नाम नगरमें राजा रणवीरसिंह और उसकी त्रिलोचना नामकी रानी थी। इसी नगरमें एक कुणबी रहता था। उसकी पुत्री तुंगभद्रा थी। इस भाग्यहीन कन्याके पापोदयसे शैशव अवस्थामें ही माता पिता आदि बन्धु बांधव सब कालवश हो गये और यह अनाथिनी अकेली अन्न वस्त्रसे वंचित हुई, जुठन पर गुजार करती समय बिताने लगी।

वह जब आठ वर्षकी हुई, एक दिन घास काटनेको वनमें गई थी वहां पिहताश्रव मुनिराजके दर्शन हो गये। वह बालिका भी लोगोंके साथ श्री गुरुको नमस्कार करके धर्मश्रवण करने लगी, परंतु भूखकी वेदनासे व्याकुल हुई।

इसके कुछ भी समझमें नहीं आता था, तब इस दु:खित कन्याने दु:खसे कातर होकर पूछा—हे दयानिधान गुरुदेव! मैं

जन्मसे अनाथिनी अन्न वस्त्र तकका कष्ट पा रही हूँ, इसलिये कृपाकर ऐसा कोई उपाय बताइये कि जिससे मेरा दुःख दूर होवे।

तब श्री गुरुने कहा–हे पुत्री! यह सब तेरे पूर्वजन्मके पापका फल है। अब तू श्री जिनेन्द्रदेव निर्ग्रंथ गुरु, दयामयी धर्मपर श्रद्धा करके भाव सहित मौन एकादशी व्रतको पालन कर जिससे तेरे पापका क्षय होवे और संसारका अन्त आवे। सुन, इस व्रतकी विधि इस प्रकार है–

पौष वदी एकादशीको सोलह प्रहरका उपवास कर और ये सोलह प्रहर जिनालयमें धर्मकथा पूजाभिषेकादि धर्मध्यानमें व्यतीत कर, तीनों काल सामायिक कर, सोलह प्रहर मौनसे रह, अर्थात् मुंहसे न बोलें। हाथ, नाक, आंख आदिसे संकेत भी न करें।

इस प्रकार जब सोलह प्रहर हो जावें तब द्वादशीके दोपहरको पूजाभिषेक करके सामायिक या स्वाध्याय करे और फिर अतिथि (मुनि, गृहत्यागी) श्रावक तथा साधर्मी गृहस्थ व दीन दुखित भूखितको भोजन कराकर आप पारणा करे। जो कोई व्रती पुरुष हों उनको नारियल या खारक, बादाम आदि बांटे। इस प्रकार ग्यारह वर्ष तक यह व्रत करके फिर उद्यापन करे। और उद्यापनकी शक्ति न होवे तो दूना व्रत करे। उद्यापन विधि इस प्रकार है कि आवश्यकता होवे तो श्री जिनमंदिर बनवावे। २४ महाराजकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करके पधरावे। घण्टा, झालर, चौकी, चन्दोवा, छत्र, चमर, शास्त्रादि २४–२४ जिनालयमें पधरावे। शास्त्रभंडारकी स्थापना करें, ग्रंथ वितीर्ण करे, विद्यार्थीयोंको भोजन करावे, यथाशक्ति आवश्यक संघको जिमावे।

नारियल आदि साधर्मियोंको बांटे, महापूजा विधान करे, दुःखी अपाहिजोंको भोजन, वस्त्र औषधि आदि दान करे। भयभीत

****

जीवोंको अभयदान दे, इत्यादि विधि सुन, उस दरिद्र कन्याने भावसहित व्रत पालन किया और अन्त समय सन्यास सहित णमोकार मंत्रका स्मरण करते हुए शरीर छोड़कर तेरे घर यह पुत्र हुआ है। यह पुत्र चरमशरीरी है, इसीसे राज्यभोगमें इसका चित्त नहीं लगता है, यह बहुत ही थोडे समय घर रहेगा।

राजा इस प्रकार श्रीगुरुके मुखसे अपने पुत्रका वृत्तांत सुनकर घर आया यह संसार, देह, भोगोंसे विरक्त होकर उसने अपने पुत्रको राज्यतिलक किया। पश्चात् पिहताश्रव आचार्यके पास दीक्षा ले ली। इसके साथ और भी बहुतसे राजाओंने दीक्षा ली।

और राजा सुकोशल राज्य करने लगा। सो वह अल्पसंसारी राजनीतिकी कुटिलताको न जानता और सुखपूर्वक कालक्षेप करने लगा।

एक समय मतिसागर नाम भण्डारीने श्रुतसागर नाम मंत्रीसे मंत्र किया कि राजा राजनीतिसे अनभिज्ञ है, इसलिये इसे कैद करके मैं तुम्हें राजा बनाये देता हूँ, और मैं मंत्री होकर रहूँगा। परंतु यह वार्ता मतिसागरके पुत्र और राजाके बालसखा द्वारा राजाके कान तक पहूँच गई। राजाने मतिसागर को इस कुटिलता व धृष्टताके बदले अपमान सहित देशसे निकाल दिया और श्रुतसागरको राज्यभार सोंपकर आप अपने पिताके पास गये और दीक्षा ले ली।

यह मतिसागर भण्डारी भ्रमण करते हुए दु:खने (आर्तभावोंसे) मरणकर सिंह हुआ, सो विकराल रूप धारण किये अनेक जीवोंको घात करता हुआ विचरता था कि उसी वनमें विहार करते हुये वे हरिवाहन और सुकौशलस्वामी आ पहुंचे। सिंहने इन्हें देखकर पूर्व वैरके कारण क्रोधित होकर शरीरको विदीर्ण कर दिया। वे मुनिराज उपसर्ग जानकर निश्चल

ही शुक्लध्यानको धारणकर आत्मामें निमग्न हो गये तब सिंह भी उपशांत होकर वहांसे चला गया और ये मुनि अंतकृत केवली होकर सिद्धपदको प्राप्त हुए और सिंह मुनिहत्याके कारण मरकर नरकमें घोर दुःख भोगनेको चला गया।

प्राणी निःसंदेह अपने ही किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका फल सुख व दुःख भोगा करते हैं।

इस प्रकार एक दरिद्रा कन्याने भी मौन एकादशी व्रत श्रद्धा व भक्तिपूर्वक पालन किया जिससे फलसे वह सुकौशल स्वामी होकर सकल कर्मोंका क्षय कर सिद्धपदको प्राप्त हुई। तो और जो कोई भव्यजीव ज्ञान व श्रद्धापूर्वक यह व्रत करे तो अवश्य ही उत्तमोत्तम सुखोंको पावेंगे।

तुंगभद्र कन्या कियो, मौन व्रत चित धार।
पायो अविचल सिद्ध पद, किये काम सब छार॥

(२१) श्री गरुड पंचमी व्रत कथा

वीतराग पद वंदके, गुरु निर्ग्रन्थ मनाय।
गरुडपंचमी व्रत कथा, कहूं सबहि सुखदाय॥

जम्बूद्वीप संबंधी भरतक्षेत्रके विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण दिशामें रत्नपुर नामका नगर है। वहां गरुड नामका विद्याधर राजा अपनी गरुडा नामकी रानी सहित सानंद राज्य करता था। वह राजा अति श्रद्धा और भक्तिपूर्वक सदैव अकृत्रिम चैत्यालयोंकी पूजा वंदना करता था।

एक दिन मार्गमें इसके पूर्वभवके वैरीने अपना बदला लेने के हेतु इसकी विद्या छीन ली और इसे भूमिपर गिरा दिया।

****

सो वह राजा अपने स्थानको जानेमें असमर्थ हुआ। उद्यानमें भ्रमण करता था कि सौभाग्यसे उसे निर्ग्रन्थ परमगुरुका अचानक दर्शन हो गया। राजा श्रीगुरुको देखकर गद्‌गद् होकर विनयसहित नमस्कार कर पूछने लगा–हे प्रभु! मैं मन्दभागी विद्या–विहीन हुआ भटक रहा हूँ। कृपा करके मुझे कोई ऐसा यत्न बताइये कि जिससे मैं पुन: विद्या प्राप्त कर स्वस्थान तक जा सकूं।

यह सुनकर श्री गुरुने कहा–हे भद्र! धर्मके प्रसादसे सब काम स्वयंमेव सिद्ध होते हैं। कहा है–धर्म करत संसार सुख, धर्म करत निर्वाण। धर्म पन्थ साधे विना, नर तिर्यंच समान इसलिये तू सम्यक्त्व सहित 'गरुडपंचमी व्रत' को पालन कर इससे धरणेन्द्र व पद्मावती प्रसन्न होकर तेरी मनोकामना पूरी करेंगे।

देखो इसका फल इस प्रकार है–

मालव देशमें विंध नामका एक ग्राम है वहां नागगौड़ नामी एक मनुष्य रहता था। उसकी स्त्रीका नाम कमलावती था। उसके महाबल, परबल, राम, सोम और भीम ऐसे ५ पुत्र और चारित्रमती नामकी एक कन्या थी। नागगौड़ने अपनी चारित्रमती कन्याको ग्रामके धनदत्त गौड़के पुत्र मनोरमणके साथ ब्याह दी। ये दोनों नवदम्पति सुखसे रहने लगे।

कितनेक दिन पश्चात् इनके शांति नामका एक बालक हुआ, फिर एक दिन सुगुप्त नामके मुनि चर्या (भिक्षा) के हेतु नगरमें पधारे उन्हें देखकर चारित्रमतीको अत्यानन्द हुआ और उन्हें भक्तिपूर्वक पडगाह कर प्रासुक भोजनपान कराया।

मुनिराजने भोजनके अनन्तर 'अक्षयनिधि' यह शब्द कहे इतने ही में एक आदमीने आकर चारित्रमतिको उसके पिताके

बीमार होनेकी खबर दी। यह सुनकर चारित्रमतिने श्रीगुरुसे पूछा–हे नाथ! मेरे पिताको कौनसी व्याधि हुई है? तब श्री गुरुने कहा–पुत्री! तेरे पिताके खेतमें एक वडका झाड था, उसके नीचे एक सांपकी बांबी थी, उन बांबीमें एक पार्श्वनाथ और दूसरी नेमिनाथस्वामीकी प्रतिमा थी जिनकी पूजा हमेशा भवनवासी देव करते थे, सो तेरे पिताने उस झाड कटवाकर बांबीको नष्ट कराया है।

इनसे उन भवनवासी देवोंने क्रोधित होकर विषैली दृष्टिसे तेरे पिताको देखा हैं। और इससे वह मूर्छित हो गया हैं। तब चारित्रमतीने पूछा–हे नाथ! अब क्या यत्न करना चाहिये जिससे पिताजीको आराम मिले। तब श्रीगुरुने कहा–पुत्री श्रद्धापूर्वक गरुडपंचमी व्रत पालन कर इससे तेरे पिताकी मूर्छा दूर होकर वह स्वस्थ हो जावेगा।

इस व्रतकी विधि इस प्रकार है कि श्रावण सुदी पंचमीको उपवास करना, तीनों कालमें सामायिक करना, मंदिरमें जाकर श्री जिनेन्द्रका अभिषेक पूजन करना फिर होम (हवन) करना, देवल (मंदिर) में बांबी बनाना, उसमें दूध, घी, मिश्री धाणी कमलगट्टा तथा फूल आदि डालना, अर्हन्त प्रभुके ५ अष्टक चढाना। माला 'ॐ अर्हद्भ्यो नमः' इस मंत्रको जपना, मंगल गान भजन जागरण करना आरती करना व आशीर्वाद बोलना।

इस प्रकार पांच वर्ष तक यह व्रत पालना, पश्चात् उद्यापन करना। यदि उद्यापनकी शक्ति न होवे तो द्विगुणित (दूना) व्रत करना।

उद्यापनकी विधि इस प्रकार है कि आरती, थाली, कलश, धूपदान, चमर, चन्दोवा, अछार, शास्त्र आदि उपकरण

****
पांच पांच लाकर जिनालयमें भेंट देवें और समादान (दीवी) घण्टा, पानीके लिये घडा, झारी मंदिरमें पधरावे व अष्ट द्रव्यसे भाव सहित अभिषेकपूर्वक पूजन करे। पांच श्रावक तथा श्राविकाओंको भोजन करावे तथा दु:खित भूखितको करुणाबुद्धिसे आहारादि चारों प्रकारके दान देवें।

चारित्रमतीने नमस्कार कर उक्त व्रत ग्रहण किया। पश्चात् गुरुने कहा—पुत्री! यह व्रत तू अपने पीहर (पितृगृह) में जाकर करना और गन्धोदक अपने पिताके गलेमें लगाना, इससे वह मूर्छा रहित हो जायगा। और श्रावण सुदी ५ के दूसरे दिन श्रावण सुदी ६ को नेमिनाथस्वामीका व्रत है सो उस दिन अर्हन्त भगवानके छ: अष्टक और छ: माला जपना, पूजन अभिषेक करना, हवन करना, और पूजनादिके पश्चात् ककडी नारियल शुभ फल प्रत्येक छ: छ: सौभाग्यवती स्त्रियोंको देना।

पश्चात् इसका भी उद्यापन करना अथवा दूना व्रत करना। इस प्रकार दोनों व्रत ग्रहण कर चारित्रमती अपने पिताके घर गई और यथाविधि व्रत पालन किया तथा अपने पिताको गन्धोदक लगाया जिससे वह मूर्छा रहित हो स्वस्थ हो गया।

यह चर्चा सब नगरमें फैल गई और इस प्रकार यह गरुड (नाग) पंचमी व्रतका प्रचार संसारमें हुआ।

कुछ दिन बाद चारित्रमती घर (श्वसुर गृह) जाने लगी परंतु पिताके आग्रहसे और ठहर गई।

एक दिन वह चारित्रमति अपने पिताके खेतमें निर्मल सरोवर पर जाकर पूजा करने लगी। इस बीचमें वे ही मुनिराज, जिन्होंने व्रत दिया था, वहां भ्रमण करते हुए आ पहुंचे।

****

उन्हें देखकर चारित्रमतीने नमस्कार वंदना की और विनम्र हो धर्मश्रवणकी इच्छासे वहीं बैठ गई। धर्मोपदेश सुननेके अनन्तर चारित्रमतीने अपने घरकी कुशल पुछी। तब श्री मुनिने अवधिज्ञानसे विचारकर कहा—बेटी! तेरे पुत्रको तेरी सौकीनने नदीमें डाल दिया है। सो यदि तू श्रावण सुदी ६ का व्रत पालन करेगी, तो तेरे पुत्रको पद्मावतीदेवी लाकर तुझे देवेगी।

यह सुनकर चारित्रमती घर आई और मन, वचन, कायसे छठका व्रत पालन किया। इससे कुछ दिन पश्चात् उसका पुत्र उसे मिला इस प्रकार चारित्रमतीने मन, वचन, कायसे व्रत पालन किये और विधि सहित उद्यापन किए, पश्चात् धर्मध्यान करती हुई अंतमें सन्याससे मरण कर वह स्त्रीलिंग छेदकर स्वर्गमें देव हुई, और वहांसे आकर राजपुत्र हुई।

पश्चात् राजपुत्र भी कारण पाकर वैराग्यको प्राप्त हुआ और दीक्षा लेकर शुक्लध्यानके बलसे उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष पद प्राप्त किया।

इस प्रकार व्रतका फल सुनकर गरुड विद्याधरने मन, वचन, कायसे व्रत पालन किया। जिससे उसे पुनः विद्या सिद्ध हो गई और वह मनुष्योचित सुख भोगकर अंतमें वैराग्यको प्राप्त हो गया और दीक्षा ले तप करने लगा।

पश्चात् शुक्लध्यानके बलसे केवलज्ञान प्राप्त कर सिद्धपद पाया। इस प्रकार यदि अन्य भव्यजीव भी श्रद्धा सहित यह व्रत पालन करेंगे तो अवश्य ही उत्तम फल पावेंगे।

गरुड और चारित्रमती, अहि पंचमी व्रत पाल।
लहो शुद्ध शिवपद सही, तिनही नमूं तिहुँ काल॥

❑

****

२२ श्री द्वादशी व्रत कथा

नमों शारदा पद कमल, स्याद्वाद मय सार।
जो प्रसाद द्वादशी कथा, कहूँ भव्य हितकार॥

मालवा प्रदेशमें पद्मावतीपुर नगर था। जहां नरब्रह्म राजा अपनी विजयावती रानी सहित राज्य करता था। इस राजाको एक कुबडी कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम शीलावती पड़ा।

एक दिन शिलावतीको रोती हुई देखकर राजा रानीको अत्यन्त दुःख हुआ व अनेक प्रकारकी चिन्ता करने लगे। फिर किसी दिन भाग्योदयसे उसी नगरमें [illegible] नामक मुनिराज विहार करते हुए आये। यह सुनकर राजा अति प्रसन्न हो नगरके लोगों सहित वन्दनाको गया। और स्तुति वंदनाके अनन्तर धर्मोपदेश श्रवण किया।

पश्चात् अवसर पाकर राजाने पूछा–प्रभु! मेरी पुत्री शीलावतीको कौन पापके उदयसे यह दुःख प्राप्त हुआ है? तब श्री गुरुने अवधिज्ञानसे विचार कर कहा–ए राजा! सुनो, अवन्ती देशमें आखलपुर नगर है, वहां राजपुरोहित देहुशर्मा और उसकी कालमुरी नामकी कन्या थी।

एक दिन यह कन्या सखियों सहित वनक्रीडा निमित्त उपवनमें गई और वहां आमके वृक्षके नीचे परम दिगम्बर ऋषिराजको कायोत्सर्ग ध्यान करते हुए देखा। सो अपने रूपादिक मदसे मदोन्मत्त उस कन्याने मुनिकी बहुत निन्दा की। कुत्सित शब्द भी कहने लगी कि यह नंगा, ढोंगी और अत्यन्त कामासक्त व्यभिचारी है, यह स्त्रियोंको अपना गुप्त

****

अंग दिखलाता फिरता है, यह लज्जा रहित हुआ कभी वन और कभी बस्तीमें भटकता फिरता है, और लंघने करके अपनेको महात्मा बताता है, इत्यादि।

निंदा करते हुए मुनिराज पर मिट्टी, धूल आदि डाली मस्तक पर थुका, तथा और भी बहुत उपसर्ग किये। सो मुनि तो उपसर्ग जीतकर शुक्लध्यानके योगसे केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षको प्राप्त हुए और यह कन्या मरकर पहिले नर्कमें गई, जहां बहुत दुःख भोगे।

वहांसे निकलकर गधी हुई, सुकरी हुई, फिर हथनी हुई, फिर बिल्ली हुई, फिर नागनी हुई, फिर चांडालके घर कन्या हुई और वहांसे आकर अब यह तुम्हारे घर पुत्री हुई हैं। इस पुत्रीके भवांतरकी कथा सुनकर राजाने कहा–प्रभु! इस पापके निवारण करनेके लिए कोई धर्मका अवलम्बन बताईये, तब श्री गुरुने कहा कि यदि यह द्वादशीका व्रत करे, तो पापका नाश होकर परम सुखको प्राप्त हो।

इस व्रतकी विधि इस प्रकार है कि भादों सुदी १२ के दिन उपवास करे और संपूर्ण दिन धर्मध्यानमें बितावे, तीनों काल सामायिक करे, जिन मंदिरमें जाकर वेदीके सन्मुख पंच रंगोंमें तंदुल रंगकर साथिया काढे, तथा मंडल बनावे उसपर सिंहासन रख चतुर्मुखी जिनबिंब पधरावे, फिर पंचामृताभिषेक करे, अष्टद्रव्यसे पूजन करे। भजन और जागरण कर स्वच्छ और सुगंधी पुष्पोंसे जाप देवे। फिर जलसे परिपूर्ण कलश लेकर उस पर नारियल रक्खे तथा नवीन कपडेसे ढांककर एक रकाबीमें अर्घ्य सहित लेकर तीन प्रदक्षिणा देवे, धूप खेवे और कथा सुने।

इस प्रकार श्रद्धायुक्त बारह वर्ष तक यह व्रत पाले। फिर उद्यापन करे। अर्थात् नवीन चार प्रतिमा पधरावे अथवा चार

****

महान शास्त्र लिखाकर जिनालयमें पधराये कलश, छत्र, चमर, झारी, दर्पण आदि अष्टमंगल द्रव्य तथा अन्य आवश्यक उपकरण मंदिरमें भेंट देवे, चार प्रकारके संघको भक्तियुक्त तथा दीन दु:खियोंको करुणाभावसे चारों प्रकारके दान देवे। जिसे उद्यापनकी शक्ति न होवे तो दूना व्रत करना चाहिए।

इस प्रकार व्रतकी विधि कहकर श्री गुरुने कहा--हे राजा! तुम्हारी पुत्री शीलावतीके अर्ककेतु और चंद्रकेतु नामके दो पुत्र होंगे। इनमेंसे अर्ककेतु निज बाहुबलसे संग्राममें अनेक राजाओंको जीतकर प्रख्यात राजा होगा, पश्चात् संसार भोगोंसे विरक्त हो जिनदीक्षा लेकर परम तप करेगा।

उसके साथ उसकी माता शीलावती भी दीक्षा लेगी और आयुके अंतमें समाधिमरण कर स्त्रीलिंग छेदकर बारहवें स्वर्गमें देव होगी।

वहांसे आकर छत्रपति राजा होगी। फिर दीक्षा लेकर केवलज्ञान प्राप्तकर मोक्ष जायेगी। अर्ककेतु और चंद्रकेतु भी मोक्ष जायेंगे। यह समाचार सुनकर राजाने मुनिको नमस्कार किया और श्रद्धापूर्वक व्रतकी विधि सुनकर घर आया।

फिर मुनिराजके कहे प्रमाण व्रत पालन तथा उद्यापन विधिपूर्वक किया जिससे भवांतरोंके पापोंका नाश हुआ। इस प्रकार द्वादशीके व्रतका महात्म्य है। जो कोई भव्य जीव श्रद्धा और भक्तियुक्त यह व्रत करेंगे और कथा सुनेंगे उनको अक्षयपुण्य और सुखकी प्राप्ति होगी।

इस प्रकार द्वादशी कथा, पूरण भई सुखकार।
व्रतफल शीलवती लियो, अक्षय सुख भण्डार॥

(२३) श्री अनन्त व्रत कथा

नमों अनन्त अनन्त गुण, नायक श्री तीर्थेश।
कहूँ अनन्त व्रतकी कथा, दीजे बुद्धि जिनेश॥

इसी जम्बूद्वीपके आर्यखण्डोंमें कौशल देश है। उसमें अयोध्या नगरीके पास पद्मखण्ड नामका ग्राम था। उस ग्राममें सोमशर्मा नामका एक अति दरिद्र ब्राह्मण अपनी सोमा नामकी स्त्री और बहुतसी पुत्रियों सहित रहता था। यह (ब्राह्मण) विद्याहीन और दरिद्र होनेके कारण भीख मांग कर उदर पोषण करता था, तो भी भरपेट खानेको नहीं पाता था।

तब एक दिन अपनी स्त्रीकी सम्मतिसे उसने सहकुटुम्ब प्रस्थान किया तो चलते समय मार्गमें शुभ शकुन हुए। अर्थात् सौभाग्यवती स्त्रियां सन्मुख मिलीं। कुछ और आगे चला तो क्या देखता है कि, हजारों नरनारी किसी स्थानको जा रहे हैं पूछनेसे विदित हुआ कि ये सब अनन्तनाथ भगवानके समोशरणमें वन्दनाके लिये जा रहे हैं।

यह जानकर यह ब्राह्मण भी उनके पीछे हो लिया और समोशरणमें गया। वहां प्रभुकी वन्दनाकर तीन प्रदक्षिणा दी और नर कोठेमें यथास्थान जा बैठा, जहां समवशरणमें दिव्यध्वनि सुनकर उसे सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हुई।

पश्चात् चारित्रका कथन सुनकर उसने जुआ, मांस, मद्य, वैश्यासेवन, शिकार, चोरी और परस्त्रीसेवन ये सात व्यसन त्याग किये। पंच उदम्बर और तीन मकार त्याग ये अष्ट मूलगुण भी धारण किये। हिंसा, झुठ, चोरी, कुशील और अतिशय लाभ इन पंच पापोंका एकदेश त्यागरूप अणुव्रत

और तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत भी ग्रहण किये। इस प्रकार सम्यक्त सहित बारह व्रत लिये। पश्चात् कहने लगा–

हे नाथ! मेरी दरिद्रता किस प्रकारसे मिटे तो कृपा करके कहिये।

तब भगवानने उसे अनन्त चौदसका व्रत करनेको कहा। इस व्रतकी विधि इस प्रकार है कि भादों सुदी ११ का उपवास कर १२ और १३ को एकाशन करे। पश्चात् एकाशनसे मौन सहित स्वादरहित प्रासुक भोजन करे, सात प्रकार गृहस्थोंके अन्तराय पाले, पश्चात् चतुर्दशीके दिन उपवास करे। तथा चारों दिन ब्रह्मचर्य रखे, भूमि पर शयन करे व्यापार आदि गृहारंभ न करे। मोहादि रागद्वेष तथा क्रोध, मान, माया, लोभ हास्यादिक कषायोंको छोड़े, सोना, चांदी या रेशम सूत आदिका अनन्त बनाकर, इसमें प्रत्येक गांठपर १४ गुणोंका चिन्तवन करके १४ गांठ लगाना।

प्रथम गांठपर ऋषभनाथ भगवानसे अनन्तनाथ भगवान तक १४ तीर्थंकरोंके नाम उच्चारण करे।

दूसरी गांठ पर सिद्धपरमेष्ठिके १४ गुण चिन्तवन करे। तीसरी पर १४ मुनि जो मतिश्रुत अवधिज्ञान युक्त हो गये हैं उनके नाम उच्चारण करे।

चौथी पर केवली भगवानके १४ अतिशय केवलज्ञान कृत स्मरण करे। पांचवीं पर जिनवाणीमें जो १४ पूर्वह उनका चिन्तवन करे।

छठवीं पर चौदह गुणस्थानोंका विचार करे। सातवी पर चौदह मार्गणाओंका स्वरूप विचारें।

आठवीं पर १४ जीवसमासोंका विचार करें, नवमीं पर गंगादि १४ नदियोंका नामोच्चारण करे। दशवीं पर तीनलोक जो १४ राजू प्रमाण ऊंचा है उसका विचार करे।

ग्यारहवीं पर चक्रवर्तीके चौदह रत्नोंका चिन्तवन करे। बारहवीं पर १४ स्वर (अक्षर) का चिन्तवन करे। तेरहवीं पर चौदह तिथियोंका विचार करे। चौदहवीं गांठ पर मुनिके मुख्य १४ दोष टालकर जो आहार लेते हैं उनका विचार करे। इस प्रकार १४ गांठ लगाकर मेरुके उपर स्थापित प्रतिमाके सन्मुख इस अनन्तको रखकर अभिषेक करे। अनन्त प्रभुकी पूजन करे फिर नीचे लिखा मंत्र १०८ बार जपे–

मंत्र–ॐ अर्हते भगवते अनन्तो अनन्त सिद्ध धम्मे भगवतो महाविद्ध–अनन्त केवलीय अनन्त केवल णाणे अनन्त केवल दंसणे अणु पुज वासणें अनन्ते अनन्तागम केवलि स्वाहा (१) अथवा छोटा मंत्र जपे–

मंत्र–ॐ अर्हं हंस: अनन्तकेवलिये नम:। (२)

इस प्रकार चारों दिन अभिषेक, जप और जागरण भजन पूजनादि करे। फिर पूनमके दिन उस अनन्तको दाहिनी भूजापर या गलेमें बान्धे।

पश्चात् उत्तम मध्यम या जघन्य पात्रोंमें से जो समय पर मिल सके आहार आदि दान देकर आप पारणा करे। इस प्रकार १४ वर्ष तक करे। पश्चात् उद्यापन करे तब १४ प्रकारके उपकरण मंदिरमें देवें जैसे–शास्त्र, चमर, छत्र, चौकी आदि। चार प्रकार संघोंको आमंत्रण करके धर्मकी प्रभावना करे। यदि उद्यापनकी शक्ति न होवे तो दूना व्रत करे।

इस प्रकार श्री मुखसे व्रतकी विधि और उत्तम फल सुनकर उन ब्राह्मणने स्त्री सहित यह व्रत लिया। तथा और भी बहुत लोगोंने यह व्रत लिया।

पश्चात् नमस्कार करके वह ब्राह्मण अपने ग्राममें आया और भाव सहित १४ वर्ष व्रतको विधियुक्त पालन करके उद्यापन किया। इससे दिनोंदिन उसकी बढती होने लगी। इसके साथ रहनेसे और भी बहुत लोग धर्म-मार्गमें लग गये। क्योंकि लोग जब उसकी इस प्रकार बढती देखकर उससे इसका कारण पूछते तो वह अनन्त व्रत आदि व्रतोंकी महिमा और जिनभाषित धर्मके स्वरूपका कथन कह सुनाता। इससे बहुत लोगोंकी श्रद्धा उस पर हो जाती और वे उसे गुरु मानने लगते।

इस प्रकार वह ब्राह्मण भले प्रकार सांसारिक सुखोंको भोगकर अंतमें सन्यास मरण कर स्वर्गमें देव हुआ। उसकी स्त्री भी समाधिसे मरकर उसी स्वर्गमें उसकी देवी हुई। वहां अपनी पूर्व-पर्यायका अवधिसे विचारकर धर्मध्यान सेवन करके वहांसे चये, सो वह ब्राह्मण जीव अनन्तवीर्य नामका राजा हुआ और ब्राह्मणी उसकी पट्टरानी हुई।

ये दोनों दीक्षा लेकर अनन्तवीर्य तो इसी भवसे मोक्षको प्राप्त हुए और श्रीमती स्त्रीलिंग छेदकर अच्युत स्वर्गमें देव हुई। वहांसे चयकर मध्यलोकमें मनुष्य भव धारण कर संयम ले मोक्ष जावेगी।

इस प्रकार एक दरिद्र ब्राह्मणी अनन्त व्रत पालकर सद्गतिको पाकर उत्तमोत्तम गतिको प्राप्त हुई। यदि अन्य भव्य जीव यह व्रत पालेंगे तो भी सद्गति पावेंगे।

सोमशर्म सोमा सहित, अनन्त चौदश व्रत पाल।
लहो स्वर्ग अरु मोक्षपद, ते वन्दूं त्रैकाल॥

****

२४ श्री अष्टान्हिका नन्दीश्वर व्रत कथा

वन्दों पांचों परमगुरु, चौबीसों जिनराज।
अष्टाह्निका व्रतकी कहूं, कथा सबहि सुखकाज॥

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्र सम्बन्धी आर्यखण्डमें अयोध्या नामका एक सुन्दर नगर है। वहां हरिषेण नामका चक्रवर्ती राजा अपनी गन्धर्वश्री नामकी पट्टरानी सहित न्यायपूर्वक राज्य करता था एक दिन वसंतऋतुमें राजा नगरजनों तथा अपनी ९६००० रानियों सहित वनक्रीडाके लिए गया।

वहां निरापद स्थानमें एक स्फटिक शिलापर अत्यन्त क्षीणशरीरी महातपस्वी परम दिगम्बर अरिंजय और अमितंजय नामके चारण मुनियोंको ध्यानरूढ देखें। सो राजा भक्तिपूर्वक निज वाहनसे उतरकर पट्टरानी आदि समस्तजनों सहित श्री मुनियोंके निकट बैठ गया और सविनय नमस्कार कर धर्मका स्वरुप सुननेकी अभिलाषा प्रगट करता हुआ। मुनिराज जब ध्यान कर चूके तो धर्मवृद्धि दी, और पश्चात् धर्मोपदेश करने लगे।

मुनिराज बोले–राजा! सुनो, संसारमें कितनेक लोग गंगादि नदियोंमें नहानेको, कोई कन्दमूलादि भक्षणको, कोई पर्वतसे पडनेमें, कोई गयामें श्राद्धादि पिंडदान करनेमें, कोई ब्रह्मा, विष्णु शिवादिककी पूजा करनेमें, कालभैरों, भवानी काली आदि देवियोंकी उपासनामें धर्म मानते हैं अथवा नवग्रहादिकोंके जप कराने और मस्तसाँडों सदृश कुतपस्वियों आदिको दान देनेमें कल्याण होना समझते हैं, परंतु यह सब धर्म नहीं है और न इससे आत्महित होता है, किन्तु केवल मिथ्यात्वकी वृद्धि होकर अनन्त संसारका कारण बन्ध ही होता है।

इसलिये परम पवित्र अहिंसा (दयामई धर्मको धारणकर) जो समस्त जीवोंको सुखदायी है और निर्ग्रन्थ मुनि (जो संसारके विषयभोगोंसे विरक्त ज्ञान, ध्यान, तपमें लवलीन है, किसी प्रकारका परिग्रह आडम्बर नहीं रखते हैं और सबको हितकारी उपदेश देते हैं) को गुरु मानकर उनकी सेवा वैयावृत्त कर, जन्म, मरण, रोग, शोक, भय, परिग्रह, क्षुधा, तृषा, उपसर्ग आदि सम्पूर्ण दोषोंसे रहित, वीतराग देवका आराधन कर, जीवादि तत्वोंका यथार्थ श्रद्धान करके निजात्म तत्वको पहिचान, यही सम्यग्दर्शन है। ऐसे सम्यग्दर्शन तथा ज्ञानपूर्वक सम्यक्-चारित्रको धारण कर, यही मोक्ष (कल्याण) का मार्ग है।

सातों व्यसनोंका त्याग, अष्ट मूलगुण धारण, पंचाणु व्रत पालन इत्यादि गृहस्थोंका चारित्र है, और सर्व प्रकार आरम्भ परिग्रह रहित द्वादश प्रकारका तप करना, पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्ति आदिका धारण करना सो, अट्ठाइस मूलगुणों सहित मुनियोंका धर्म है (चारित्र है), इस प्रकार धर्मोपदेश सुनकर राजाने पूछा-प्रभो! मैंने ऐसा कौनसा पुण्य किया है जिसे यह इतनी बडी विभूति मुझे प्राप्त हुई है।

तब श्री गुरुने कहा, कि इसी अयोध्या नगरीमें कुबेरदत्त नामक वैश्य और उसकी सुन्दरी नामकी पत्नी रहती थी, उसके गर्भसे श्रीवर्मा, जयकीर्ति और जयचन्द ये तीन पुत्र हुए।

सो श्रीवर्माने एक दिन मुनिराजको वंदना करके आठ दिनका नन्दीश्वर व्रत किया, और उसे बहुत कालतक यथाविधि पालन कर आयुके अंतमें सन्यास मरण किया जिससे प्रथम स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुआ, वहां असंख्यात वर्षोंतक देवोचित सुख भोगकर आयु पूर्णकर चया, सो अयोध्या नगरीमें न्यायी

और सत्यप्रिय राजा चक्रबाहुकी रानी विमलादेवीके गर्भसे तू हरिषेण नामका पुत्र हुआ है। और तेरे नन्दीश्वर व्रतके प्रभावसे यह नव निधि चौदह रत्न, छयानवें हजार रानी आदि चक्रवर्तीकी विभूति यह छः खण्डका राज्य प्राप्त हुआ है।

और तेरे दोनों भाई जयकीर्ति और जयचंद भी श्री धर्मगुरुके पाससे श्रावकके बारह व्रतों सहित उक्त नन्दीश्वर व्रत पालकर आयुके अन्तमें समाधिमरण करके स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुए थे सो वहांसे चयकर हस्तिनापुरमें विमल नामा वैश्यकी साध्वी सती लक्ष्मीमतीके गर्भसे अरिजय अमितंजय नामके दोनों पुत्र हुए सो ये दोनों भाई हम ही हैं।

हमको पिताजीने जैन उपाध्यायके पास चारों अनुयोग आदि संपूर्ण शास्त्र पढाये और अध्ययन कर चुकनेके अनंतर कुमारकाल बीतने पर हम लोगोंके ब्याहकी तैयारी करने लगे, परंतु हम लोगोंने ब्याहको बंधन समझकर स्वीकार नहीं किया और बाह्याभ्यन्तर परिग्रह त्याग करके भी गुरुके निकट दीक्षा ग्रहण की, सो तपके प्रभावसे यह चारण ऋद्धि प्राप्त हुई है।

यह सुनकर राजा बोला—हे प्रभु! मुझे भी कोई व्रतका उपदेश करो, तब श्री गुरुने कहा कि तुम नंदीश्वर व्रत पालों और श्री सिद्धचक्रकी पूजा करो। इस व्रतकी विधि इस प्रकार है सो सुनो—

इस जम्बूद्वीपके आसपास लवण समुद्रादि असंख्यात समुद्र और घातिकीखण्डादि असंख्यात द्वीप एक दूसरेको चूडीके आकार घेरे हुए दुने विस्तारको लिये हैं। उन सब द्वीपोंमें जम्बूद्वीप नाभिवत् सबके मध्य है। सो जम्बूद्वीपको आदि लेकर, जो घातकीखण्ड पुष्करवर, वारुनीवर, क्षीरवर, घृतवर, इक्षुवर

****

और नंदीश्वर द्वीपमें प्रत्येक दिशामे एक अंजनगिरि, चार दधिमुख और रतिकर इस प्रकार (१३) तेरह पर्वत हैं।

चारों दिशाओंके मिलकर सब ५२ पर्वत हुए। इन प्रत्येक पर्वतों पर अनादि निधन (शाश्वत्) अकृत्रिम जिन भवन है, और प्रत्येक मंदिरमें १०८ जिनबिंब अतिशययुक्त बिराजमान हैं, ये जिनबिंब ५०० धनुष ऊंचे हैं। वहां इन्द्रादि देव जाकर नित्य प्रति भक्तिपूर्वक पूजा करते हैं। परंतु मनुष्यका गमन नहीं होता इसलिये मनुष्य उन चैत्यालयोंकी भावना अपने अपने स्थानीय चैत्यालयोंमें ही भाते है। और नंदीश्वर द्वीपका मण्डल मांडकर वर्षमें तीन बार (कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ मासके शुक्ल पक्षोंमें ही अष्टमीसे पूनम तक) आठ दिन पूजनाभिषेक करते हैं, और आठ दिन व्रत भी करते हैं। अर्थात् सुदी सातमसे धारणा करनेके लिये नहाकर प्रथम जिनेन्द्र देवका अभिषेक पूजा करे, फिर गुरुकेपास अथवा गुरु न मिले तो जिनबिंबके सन्मुख खडे होकर व्रतका नियम करे।

सातमसे पडिमा तक ब्रह्मचर्य रक्खे, सातमको एकासन करे, भूमिपर शयन करे, सचित्त पदार्थोका त्याग करे। आठमको उपवास करे, रात्रि जागरण करे, मंदिरमें मंडल मांडकर अष्टद्रव्योंसे, पूजा और अभिषेक करे, पंचमेरु की स्थापना कर पूजा करे, चौवीस तीर्थंकरोंकी पूजा जयमाला पढे, नंदीश्वर व्रतकी कथा सुने और 'ॐ नंदीश्वरसंज्ञाय नमः' इस मंत्रकी १०८ बार जाप करे।

आठमके उपवाससे १० दश लाख उपवासोंका फल मिलता है नवमीको सब क्रिया आठमके समान ही करना, केवल 'ॐ ह्रीं अष्टमहाविभूतिसंज्ञाय नमः' इस मंत्रकी १०८ जाप करे। और दोपहर पश्चात् पारणा करे। इस दिन दश हजार उपवासोंका फल होता है।

दशमीके दिन भी सब क्रिया आठमके समान ही करे। 'ॐ ह्रीं त्रिलोकसारसंज्ञाय नमः' इस मंत्रकी १०८ जाप करे और केवल पानी और भात खाये। इस दिनके व्रतका फल साठ लाख उपवासके समान होता है।

ग्यारसके दिन भी सब किया आठमके समान करे, सिद्धचक्रकी त्रिकाल पूजा करे और 'ॐ ह्रीं चतुर्मुखसंज्ञाय नमः' इस मंत्रकी १०८ बार जाप करे और ऊनोदर (अल्प भोजन) करे।

इस दिनके व्रतसे ५० लाख उपवासका फल होता है। बारसको भी सब क्रिया ग्यारसके ही समान करे और 'ॐ ह्रीं पंचमहालक्षणसंज्ञाय नमः' इस मंत्रकी १०८ जाप करे तथा एकाशन करे। इस दिनके व्रतसे ८४ लाख उपवासोंका फल होता है।

तेरसके दिन भी सर्व क्रिया बारसके समान करे, केवल 'ॐ ह्रीं स्वर्गसोपानसंज्ञाय नमः' इस मंत्रकी १०८ जाप करे और इमली और भातका भोजन करे। इस दिनके व्रतसे ४० लाख उपवासका फल मिलता है।

चौदसके दिन सब क्रिया उपरके समान ही करे और 'ॐ ह्रीं सिद्धचक्राय नमः' इस मंत्रकी १०८ जाप करे तथा त्रण (सूखा) साग आदि शुद्ध हो तो उसके साथ अथवा पानीके साथ भात खावे। इस दिनके व्रतका फल १ करोड़ उपवासका फल होता है।

पुनमके दिन सब क्रिया उपरके ही समान करे केवल 'ॐ ह्रीं इन्द्रध्वजसंज्ञाय नमः' इस मंत्रकी १०८ जाप करे तथा चार प्रकारके आहार त्याग करे (अनशन व्रत करे) इस दिनके व्रतका तीन करोड पांच लाख उपवासका फल होता है।

****

पश्चात् पडिमाके दिन पूजनादि क्रियासे अनन्तर घर आकर चार प्रकार संघोंको चार प्रकारका दान करके आप पारणा करे।

जो कोई इस व्रतको तीन वर्ष तक करता है उसे स्वर्गसुख मिलता है। पीछे कितनेक भवमें नियमसे मोक्ष जाता है और जो पांच वर्ष तक करता है वह उत्तमोत्तम सुख भोगकर सातवें भव मोक्ष जाता है, तथा जो सात वर्ष एवं आठ वर्ष तक व्रत करता है वह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी योग्यतापूर्वक उसी भवसे मोक्ष जाता है।

इस व्रतको अनन्तवीर्य और अपराजितने किया, सो ये दोनों चक्रवर्ती हुए। और विजयकुमार इस व्रतके प्रभावसे चक्रवर्तीका सेनापति हुआ। जरासिंधुने पूर्वजन्ममें यह व्रत किया, जिससे वह प्रतिनारायण हुआ।

जयकुमार सुलोचनाने यह व्रत किया जिसे वह अवधिज्ञानी होकर ऋषभनाथ भगवान ७२ वा गणधर हुआ। और उसी भवसे मोक्ष गये। सुलोचना भी आर्यिकाके व्रत धारणकर स्त्रीलिंग छेदकर स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुई।

श्रीपालका भी इससे कोढ़ गया और उसी भवसे मोक्ष भी हुआ। अधिक कहां तक कहा जाय? इस व्रतकी महिमा कोटि जीभसे भी नहीं की जा सकती है।

इस प्रकार तीन, पांच व सात (आठ) वर्ष इस व्रतको करके उद्यापन करे, आवश्यकता हो तो नवीन जिनालय बनावे, सब संघोंको तथा विद्यार्थिजनोंको मिष्टान्न भोजन करावे, चौवीस तीर्थंकरोंकी प्रतिमा पधरावे, शांति हवन आदि शुभ कार्य करे, प्रतिष्ठा करावे, पाठशाला बनावे, ग्रंथोंका जीर्णोद्धार करे, और प्रत्येक प्रकारके उपकरण आठ आठ मंदिरमें भेंट करे, इस प्रकार उत्साहसे उद्यापन करे। यदि उद्यापनकी शक्ति न हो तो व्रत दूना करे इत्यादि।

****

इस प्रकार राजा हरिषेणने व्रतकी विधि और फल सुनकर मुनिराजको नमस्कार किया और घर जाकर कितनेक वर्षोतक यथा विधि यह व्रत पालन करके पश्चात् संसार भोगोंसे विरक्त होकर जिन दीक्षा ले ली, सो तपके प्रभाव व शुक्लध्यानके बलसे चार घातिया कर्मोंका नाश करके केवलज्ञान प्राप्त किया और अनेक देशोंमें विहार कर भव्यजीवोंको संसारमें पार होनेवाले सच्चे जिन मार्गमें लगाया। पश्चात् आयुके अंतमें शेष कर्मोंको नाश कर सिद्ध पद पाया।

इस प्रकार यदि आज भव्यजीव भी इस प्रकार पालन करेंगे तो वे उत्तमोत्तम सुखोंको अपने२ भावोंके अनुसार पाकर उत्तम गतियोंको प्राप्त होवेंगे। तात्पर्य व्रतका फल तब ही होता है जबकि मिथ्यात्व तथा क्रोध, मान, माया और लोभ आदि कषाय तथा मोहको मंद किया जाय। इस लिए इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

नन्दीश्वर व्रत फल लियो, श्री हरिषेण नरेश।
कर्म नाश शिवपुर गयो, वन्दूं चरण हमेश॥

२५ श्री रविवार (आदित्यवार) व्रत कथा

काशी देशकी बनारस नगरीका राजा महीपाल अत्यंत प्रजावत्सल और न्यायी था। उसी नगरमें मतिसागर नामका एक सेठ और गुणसुन्दरी नामकी उसकी स्त्री थी। इस सेठके पूर्व पुण्योदयसे उत्तमोत्तम गुणवान तथा रूपवान सात पुत्र उत्पन्न हुए।

उनमें छः का तो विवाह हो गया था, केवल लघुपुत्र गुणधर कुंवारे थे सो गुणधर किसी दिन वनमें क्रीडा करते विचर रहे थे तो उनका गुणसागर मुनिके दर्शन हो गये। वहां मुनिराजका

****

आगमन सुनकर और भी बहुत लोग वन्दनार्थ वनमें आये थे और सब स्तुति वन्दना करके यथा स्थान बैठे। श्री मुनिराज उनको धर्मवृद्धि कहकर अहिंसादि धर्मका उपदेश करने लगे।

जब उपदेश हो चूका तब साहूकारकी स्त्री गुणसुन्दरी बोली स्वामी! मुझे कोई व्रत दीजिये। तब मुनिराजने उसे पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतका उपदेश दिया और सम्यक्त्वका स्वरूप समझाया, और पीछे कहा–बेटी! तू आदित्यवारका व्रत कर, सुन, इस व्रतकी विधि इस प्रकार है कि आषाढ मासमें प्रथम पक्षमें प्रथम रविवारसे लेकर नव रविवारों तक यह व्रत करना चाहिये।

प्रत्येक रविवारके दिन उपवास करना या बिना नमक (मीठा) के अलोना भोजन एकबार (एकासना) करना पार्श्वनाथ भगवानकी पूजा अभिषेक करना। घरके सब आरम्भका त्यागकर विषय और कषाय भावोंको दूर करना, ब्रह्मचर्यसे रहना, रात्रि जागरण भजनादि करना और 'ॐ ह्रीं अर्हं पार्श्वनाथाय नमः' इस मंत्रकी १०८ बार जाप करना।

इस प्रकार नव वर्ष तक यह व्रत करके पश्चात् उद्यापन करना। प्रथम वर्ष नव उपवास करना, दूसरे वर्ष नमक बिना भात और पानी पीना, तीसरे वर्ष नमक बिना दाल भात खाना, चौथे वर्ष बिना नमककी खिचडी खाना, पांचवें वर्ष बिना नमककी रोटी खाना, छट्ठे वर्ष बिना नमक दही भात खाना, सातवें तथा आठवे वर्ष नमक बिना मूंगकी दाल और रोटी खाना और नववें वर्ष एकबारका परोसा हुआ (एकटाना) नमक बिना भोजन करना, फिर दूसरीवार नहीं लेना और थालीमें जूठन भी नहीं छोडना।

****

नवधाभक्ति कर मुनिराजको भोजन कराना और नव वर्ष पूर्ण होनेपर उद्यापन करना। सो नव नव उपकरण मंदिरोंमें चढाना, नव शास्त्र लिखवाना, नव श्रावकोंको भोजन कराना, नव नव फल श्रावकोंको बांटना समवशरणका पाठ पढना, पूजन विधान करना आदि।

इस प्रकार गुणसुंदरी व्रत लेकर घर आई, और सब कथा घरके लोगोको कह सुनाई तो घरवालोंने सुनकर इस व्रतकी बहुत निंदा की। इसलिये उसी दिनसे उस घरमें दरिद्रताका वास हो गया। सबलोग भूखों मरने लगे, तब सेठके सातों पुत्र सलाह करके परदेशको निकले। सो साकेत (अयोध्या) नगरीमें जिनदत्त सेठके घर जाकर नोकरी करने लगे और सेठ सेठानी बनारस ही में रहे।

कुछ कालके पश्चात् बनारसमें कोई अवधिज्ञानी मुनि पधारे, सो दरिद्रतासे पीडित सेठ सेठानी भी वन्दनाको गये और दीन भावसे पूछने लगे–हे नाथ! क्या कारण है कि हम लोग ऐसे रंक हो गये? तब मुनिराजने कहा–तुमने मुनिप्रदत्त रविवार व्रतकी निंदा की है इससे यह दशा हुई है।

यदि तुम पुन: श्रद्धा सहित इस व्रतको करो तो तुम्हारी खोई हुई सम्पत्ति तुम्हें फिर मिलेगी। सेठ सेठानीने मुनिको नमस्कार करके पुन: रविवार व्रत किया, और श्रद्धा सहित पालन किया जिससे उनको फिरसे धन धान्यादिकी अच्छी प्राप्ति होने लगी।

परंतु इनके सातों पुत्र साकेतपुरीमें कठिन मजूरी करके पेट पालते थे तब एक दिन लघु भ्राता गुणधर वनमें घास काटनेको गया था, सो शीघ्रतासे गड्डा बांधकर घर चला आया और हंसिया (दाँतडुं) वही भूल आया। घर आकर उसने भावजसे भोजन मांगा। तब वह बोली–

****

लालजी! तुम हंसिया भूल आये हो, सो जल्दी जाकर ले आओ पीछे भोजन करना, अन्यथा हंसिया कोई ले जायेगा तो सब काम अटक जायेगा। विना द्रव्य नया दांतडा कैसे आयेगा? यह सुनकर गुणधर तुरंत ही पुनः वनमें गया सो देखा कि हंसिया पर बडा भारी सांप लिपट रहा है।

यह देखकर बहुत दुःखी हुये कि दांतडा बिना लिये तो भोजन नहीं मिलेगा। और दांतडा मिलना कठिन हो गया है तब वे विनीत भावसे सर्वज्ञ वीतराग प्रभुकी स्तुति करने लगे सो उनके एकाग्रचित्तसे स्तुति करनेके कारण धरणेन्द्रका आसन हिला, उसने समझा कि अमुक स्थानोंमें पार्श्वनाथ जिनेन्द्रके भक्तको कष्ट हो रहा है।

तब करुणा करके पद्मावतीदेवीको आज्ञा की कि तुम जाकर प्रभुभक्त गुणधरका दुःख निवारण करो। यह सुनकर पद्मावतीदेवी तुरंत वहां पहुंची, और गुणधरसे बोली—

हे पुत्र! तुम भय मत करो। यह सोनेका दांतडा और रत्नका हार तथा रत्नमई पार्श्वनाथ प्रभुका बिंब भी ले जाओ, सो भक्तिभावसे पूजा करना इससे तुम्हारा दुःख शोक दूर होगा।

गुणधर, देवी द्वारा प्रदत्त द्रव्य और जिनबिंब लेकर घर आये सो प्रथम तो उनके भाई यह देखकर डरे, कि कहीं यह चुराकर तो नहीं लाया है, क्योंकि ऐसा कौनसा पाप है जो भूखा नहीं करता है, परंतु पीछे गुणधरके मुखसे सब वृतांत सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे।

इस प्रकार दिनों दिन उनका कष्ट दूर होने लगा और थोडें ही दिनोंमें वे बहुत धनी हो गये। पश्चात् उन्होंने एक बडा मंदिर बनवाया, प्रतिष्ठा कराई, चतुर्विध संघको चारों प्रकारका यथायोग्य दान दिया और बडी प्रभावना की।

जब यह सब वार्ता राजाने सुनी, तब उन्होंने गुणधरको बुलाकर सब वृत्तांत पूछा–और अत्यन्त प्रसन्न हो अपनी परम सुन्दरी कन्या गुणधरको ब्याह दी. तथा बहुतसा दान दहेज दिया। इस प्रकार बहुत वर्षो तक ये सातो भाई राज्यमान्य होकर सानन्द वहीं रहे, पश्चात् माता–पिताका स्मरण करके अपने घर आये, और माता–पितासे मिले। पश्चात् बहुत काल तक मनुष्योचित सुख भोगकर सन्यासपूर्वक मरणकर यथायोग्य स्वर्गादि गतिको प्राप्त हुए और गुणधर उससे तीसरे भव मोक्ष गये।

इस प्रकार व्रतके प्रभावसे मतिसागर सेठका दरिद्र दूर हुआ। और उत्तमोत्तम सुख भोगकर उत्तम उत्तम गतियोंको प्राप्त हुए। जो और भव्यजीव श्रद्धा सहित बारह वर्ष व्रत पूर्वक इस व्रतका पालन करेंगे, वे उत्तम गति पायेंगे।

यह विधि रविव्रत फल लियो, मतिसागर गुणवान।
दु:ख दरिद्र नशो सकल, अन्त लहो निरवान॥

२६ श्री पुष्पांजलि व्रत कथा

नमों सिद्ध परमात्मा, सकल सिद्ध दातार।
पुष्पांजलि व्रतकी कथा, कहूं भव्य सुखकार॥

जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहमें सीता नदीके दक्षिण तट पर मंगलावती देशमें रत्नसंचयपुर नामका एक नगर है। वहां राजा वज्रसेन अपनी जयावती रानी सहित सानन्द राज्य करता था, परंतु घरमें पुत्र न होनेके कारण उदास रहता था।

सो एक दिन राजा जब रानी सहित जिन मंदिरमें दर्शन करनेको गया, तो वहां उसने ज्ञानसागर मुनिराजको बैठे देखा,

****

और भक्ति सहित उनकी पूजा वन्दना करके धर्मोपदेश सुना।

पश्चात् अवसर पाकर विनय सहित राजाने पूछा—हे प्रभो! हमारी रानीके पुत्र न होनेसे ये अत्यन्त दुखित रहती है, सो क्या इसके कोई पुत्र न होगा? तब मुनिराजने विचार कर कहा—राजा! चिंता न करो, इसके अत्यंत प्रभावशाली पुत्र होगा, जो चक्रवर्ती पद प्राप्त करेगा।

यह सुनकर राजा रानी हर्षित होकर घर आये और सुखसे रहने लगे, पश्चात् कुछ दिनोंके बाद रानीको शुभ स्वप्न हुए, और एक स्वर्गके देव रानीके गर्भमें आया। और नव मास पूर्ण होने पर रत्नशेखर नामधारी सुन्दर पुत्र हुआ।

एक दिन रत्नशेखर अपने मित्रोंके साथ जब क्रीडा कर रहा था तब इसे आकाशमार्गसे जाते हुए मेघवाहन नामके विद्याधरने देखा सो देखते ही प्रेमसे विह्वल होकर नीचे आया और राजपुत्रको अपना परिचय देकर उसका मित्र बन गया। ठीक है—पुण्यसे क्या नहीं होता हैं ?

पश्चात् राजपुत्रने भी उसे अपना परिचय देकर मेरुपर्वतकी वंदना करनेकी इच्छा प्रगट की। तब मेघवाहन बोला—हे कुमार! हमारे विमानमें बैठकर चलो, परंतु रत्नशेखरने यह स्वीकार नहीं किया और कहा कि मुझे ही विमान रचनाकी विधि या मंत्र बताओ।

सो विद्याधरने ऐसा ही किया तब विद्याधरकी सहायतासे ५०० विद्यायें साधी। पश्चात् मेघवाहनादि मित्रों सहित ढाईद्वीपके समस्त जिन मंदिरोंकी वन्दनार्थ प्रस्थान किया सो विजयार्द्ध पर्वतके सिद्धकूट चैत्यालयमें पूजा स्तवन करके रंगमण्डपमें बैठा था कि इतनेमें दक्षिण श्रेणी रथनुपुर नगरकी राजकन्या

****

मदनमंजूषा भी दर्शनार्थ सखियों सहित वहां आई, और रत्नशेखरको देखकर मोहित हो गई, परंतु लज्जावश कुछ कह न सकी, और खेदितचित्त होकर घर लौट गई।

राजा रानीने उसके खेदका कारण जानकर स्वयंवर मण्डप रचा, और सब राजपुत्रोंको आमंत्रण दिया, सो शुभ तिथिमें बहुतसे राजपुत्र यहाँ आये, उनमें चंद्रशेखर भी आया।

जब कन्या वरमाला लेकर आई तो उसने रत्नशेखरके ही कण्ठमें यह वरमाला डाली। इसपर विद्याधर राजा बहुत बिगडे कि यह विद्याधरकी कन्या है भूमिगोचरीको नहीं ब्याह सकती हैं, परंतु रत्नशेखरने उनको युद्धके लिये तत्पर देख सबको थोडी देरमें जीतकर यथास्थान बिदा कर दिया।

इनका पराक्रम देखकर बहुतसे राजा इनके आज्ञाकारी हुए, और यहीं इनको, शुभोदयसे चक्ररत्नकी प्राप्ति भी हुई, तब छहों खण्डोंको वश करके वे कुमार चक्रवर्ती पदसे भूषित होकर निज नगरमें आये और पितादि गुरुजनोंसे मिलकर आनंदसे राज्य करने लगे।

एकदिन राजा रत्नशेखर मातापिता सहित सुदर्शनमेरुकी वन्दनाको गये थे तो बडे भाग्योदयसे दो चारण मुनियोंको देखकर भक्तिपूर्वक वन्दना–स्तुति कर धर्मोपदेश सुना और अवसर पाकर अपने भवांतरोंका कथन पूछा तथा यह भी पूछा कि मदनमंजूषा और मेघवाहनका मुझपर अत्यंत प्रेम था?

तब श्री मुनिने कहा–राजा सुनो! इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्र आर्यखण्डमें मृणालपुर नामका एक नगर है, वहां राजा जितार और कनकावती सुखसे राज्य करते थे। इसी नगरमें श्रुतिकीर्ति नामका ब्राह्मण और उसकी बन्धुमती नामकी स्त्री रहती थी।

इसके प्रभावती नामकी एक पुत्री थी जिसने जैन गुरुके पास शिक्षा पाई थी।

एक दिन ब्राह्मण सपत्नी वनक्रीडाको गया था, तो वहां पर उसकी स्त्रीको सांपने काटा और वह मर गई। तब ब्राह्मण अत्यंत शोकसे विह्वल हो गया, उदास रहने लगा।

यह समाचार पाकर उसकी पुत्री प्रभावती वहां आई और अनेक प्रकारसे पिताको संबोधन करके बोली–पिताजी! संसारका स्वरूप ऐसा ही है। इसमें इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग प्रायः हुआ ही करते हैं। यह इष्टानिष्ट कल्पना मोह भावोंसे होती है। यथार्थमें न कुछ इष्ट हैं, न अनिष्ट हैं, इसलिये शोकका त्याग करो।

पश्चात् प्रभावतीने अपने पिताको जैन गुरुके पास संबोधन कराकर दीक्षा दिला दी। सो ब्राह्मणने प्रारंभमें तपश्चरण किया, परंतु चारित्र भ्रष्ट होकर मंत्र यंत्र तंत्रादिके (व्यर्थ झगडों) में फंस गया, विद्याके योगसे नई बस्ती बसाकर उसमें घर मांडकर रहने लगा और विषयासक्त हो स्वच्छन्द प्रवर्तने लगा।

तब पुनः प्रभावती उसे संबोधन करनेके लिये वहां गई और कहा–पिताजी! जिन दीक्षा लेकर इस प्रकारका प्रवर्तन अच्छा नहीं है। इससे इस लोकमें निंदा और परलोकमें दुःख सहना पड़ेंगे।

यह सुनकर ब्राह्मण कुपित हुआ और उसे वनमें अकेली छोड दी। सो जहां प्रभावती णमोकार मंत्र जपती हुई वनमें बैठी थी, वहां वनदेवी आई और पूछा बेटी, तू क्या चाहती है? तब प्रभावतीने कैलाशयात्रा करनेकी इच्छा प्रगट की।

यह सुनकर देवोंने उसे कैलासपर पहुँचा दिया। प्रभावती वहां भादो सुदी पांचमके दिन पहुंची थी, उस दिन पुष्पांजलि व्रत था, इसलिये स्वर्ग तथा पातालवासी देव भी वहां पूजन वन्दनादिके लिये आये थे। सो पद्मावतीदेवीने प्रभावतीका परिचय पाकर कहा—बेटी! तू पुष्पांजलि व्रत कर इससे तेरा सब दु:ख दूर होगा। इस व्रतकी विधि इस प्रकार है कि भादों सुदी ५ से ९ तक पांच दिन नित्यप्रति पंचमेरुकी स्थापना करके चौबीस तीर्थंकरोंकी अष्ट द्रव्योंसे पूजा अभिषेक करे पांच अष्टक तथा पांच जयमाला पढे और 'ॐ ह्रीं पंचमेरु संबन्धी अस्सी जिनालयेभ्यो नम:' इस मंत्रका १०८ वार जाप करें, पांचमका उपवास करे, और शेष दिनोंमें रस त्याग कर ऊनोदर भोजन करे। हो सके तो ५ उपवास करे, रात्रिको भजन जागरण करे, विषय कषायोंको घटावे, ब्रह्मचर्य रखे और घरका आरंभ त्यागे।

इस प्रकार पांच वर्ष तक व्रत करके फिर उद्यापन करे, सो पांच प्रकारके उपकरण पांच पांच जिनालयोंमें भेंट देदे, पांच शास्त्र पधरावे, पांच श्रावकोंको भोजन करावे, चारों प्रकारके दान देवे, इत्यादि।

यदि उद्यापन करनेकी शक्ति न होवे तो दूना व्रत करे। इस प्रकार प्रभावतीने व्रतकी विधि सुनकर सहर्ष स्वीकार किया, और उसे यथाविधि ५ वर्ष तक पालन किया तथा उद्यापन भी किया इससे उसे बहुत शांति हुई। पद्मावती देवीने उसे विमानमें बैठाकर उसके नगर मृणालपुरमें पहुँचा दिया। वहां पहुँचकर प्रभावतीने स्वयंप्रभु गुरुके पास दीक्षा ली, और तप करने लगी, सो तपके प्रभावसे उनकी बहुत प्रशंसा फैली।

यह प्रशंसा उस पितासे सहन नहीं हुई, और उसने उसे दु:ख देनेकी विद्याएं भेजी। सो विद्याएं बहुत उपसर्ग करने लगी,

परंतु प्रभावती रंच मात्र भी नहीं डिगी और अंतमें समाधिमरण करके अच्युत स्वर्गमें देव हुई। वहां उसका नाम पद्मनाभ हुआ।

इसी बीच मृणालपुरकी एक रूक्मणी नामकी श्राविका मरकर उसी देवकी देवी हुई। सो ये दोनो सुखपूर्वक कालक्षेप करने लगे। एक दिन उस पद्मनाभ देवने विचारा, कि हमारा पूर्व जन्मका पिता मिथ्यात्वमें पड़ा है उसे संबोधन करना चाहिए।

यह विचार कर उसके पास गया और अपना सब वृतांत कहा, सो सुनकर वह बहुत लज्जित हुआ और सब प्रपंच छोड़कर शांतिचित हुआ। पश्चात् जिनोक्त तपश्चरण किया, और समाधिसे मरण कर स्वर्गमें प्रभास देव हुआ।

सो वह पद्मनाभदेव स्वर्गसे चयकर तू रत्नशेखर चक्रवर्ती हुआ हैं, और पद्मनाभकी देवी तेरी मदनमंजूषा नामकी पट्टरानी हुई हैं। तथा प्रभासदेव वहांसे चयकर यह तेरा मित्र मेघवाहन विद्याधर हुआ है।

सो हे राजा! तूने पूर्व भवमें पुष्पांजलि व्रत किया था जिसके फलसे स्वर्गसे सुख भोगकर यहां चक्रवर्ती हुआ है, और ये दोनों भी तेरे पूर्वजन्मकें सम्बन्धी हैं इससे इनका तुझ पर परम स्नेह हैं।

यह सुनकर राजाने पुष्पांजलि व्रत धारण किया और यात्रा करके घर आया व विधि सहित व्रत किया, पश्चात् बहुत कालतक राज्य करके संसारसे विरक्त होकर निज पुत्रको राज्यभार सौपकर जिन दीक्षा ले ली और घोर तप करके केवलज्ञान प्राप्त किया तथा अनेक भव्य जीवोंको धर्मोपदेश दिया पश्चात् शेष कर्मोको नाश करके मोक्षपद प्राप्त किया। मदनमंजूषाने दीक्षा ले ली, सो तपकर सोलहवें स्वर्गमें देव हुई। मेघवाहन आदि अन्य राजा भी यथायोग्य गतियोंको प्राप्त हुए। इस प्रकार और भी भव्य जीव

श्रद्धासहित यह व्रत पालेंगे तथा कषायोंको कृश करेंगे तो वे भी उत्तमोत्तम पदको प्राप्त होंगे।

पुष्पांजलि व्रत पालकर, प्रभावती गुणमाल।
लहो सिद्ध पद अन्तमें, नमों त्रियोग सम्हाल॥

(२७) श्री बारहसौ चौतीस व्रतकी कथा

वन्दूं आदि जिनेन्द्र पद, मन वच तन सिर नाय।
बारहसौ चौतीस व्रत, कथा कहूँ सुखदाय॥

मगध देशमें राजगृही नगरका स्वामी राजा श्रेणिक न्यायपूर्वक राज्य शासन करता था। इसकी परम सुन्दरी और जिनधर्मपरायण श्रीमती चेलना पट्टरानी थी, सो जब विपुलाचल पर महावीर भगवानका समवशरण आया तब राजा प्रजासहित वंदनाको गया। और वंदना स्तुति करके मनुष्योंकी सभामें बैठकर धर्मोपदेश सुनने लगा।

पश्चात् राजाने पूछा—हे प्रभु! षोडशकारण व्रतसे तो तीर्थंकर पद मिलता ही है, परंतु क्या अन्य प्रकारसे भी मिल सकता है, सो कृपाकर कहिये। तब गौतमस्वामीने कहा—राजन् सुनो! जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें आर्यखण्डमें अवन्ती देश है, वहां उज्जयनी नगरी है, जहां हेमवर्मा राजा अपनी शिवसुन्दरी रानी सहित राज्य करता था।

एक दिन राजा वनक्रीडा करनेको वनमें गया था, और वहां चारण मुनियोंको देखकर नमस्कार किया तथा मनमें समताभाव धरकर विनय सहित पूछने लगा—भगवान! कृपा करके बताइये कि मैं किस प्रकार तीर्थंकर पद प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त करूँ? तब श्री गुरुने कहा—

****

राजन्! तुम बारहसौचौतीस व्रत करो। यह व्रत भादों सुदी १ से प्रारंभ होता है। १२३४ उपवास तथा एकाशन करना चाहिए। यह व्रत दश वर्ष और साड़ेतीन माहमें पूरा होता है और एकांतर करे तो ५ वर्ष पौने दो मासमें ही पूर्ण हो जाता है। व्रतके दिन रस त्यागकर नीरस भोजन करे, आरम्भ परिग्रहका त्याग कर भक्ति और पूजामें निमग्न रहे। और 'ॐ ह्रीं असिआउसा चारित्रशुद्धव्रतेभ्यो नमः' इस मंत्रका १०८ बार जाप करे। जब व्रत पूरा हो जावे, तब उद्यापन करे।

झारी, थाली, कलश आदि उपकरण चैत्यालयमें भेंट कर, चौसठ ग्रंथ पधरावे, चार प्रकारका दान करे तथा १२३४ लाडू श्रावकोंके घर बांटे, पाठशालादि स्थापन करे इत्यादि और यदि उद्यापनकी शक्ति न होवे तो दूना व्रत करे।

इस प्रकार राजाने व्रतकी विधि सुनकर उसे यथा विधि पालन किया व उद्यापन भी किया।

अंतमें समाधिमरण करके अच्युत स्वर्गमें देव हुआ। वहांसे चयकर वह विदेहक्षेत्रके विजयापुरीमें धनंजय राजाके चन्द्रभानु प्रभु नामका तीर्थंकर पदधारी हुआ। उसके गर्भादिक पांच कल्याणक हुए।

इस प्रकार राजा हेमवर्मा स्वर्गके सुख भोगकर तीर्थंकर पद प्राप्त करके इस व्रतके प्रभावसे मोक्ष गया। इसलिये हे श्रेणिक! तीर्थंकर पद प्राप्त करनेके लिये यह व्रत भी एक साधन है।

यह सुनकर राजा श्रेणिकने भी श्रद्धासहित इस व्रतको धारण किया और षोडशकारण भावनायें भी भायीं सो तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध किया। अब आगामी चौबीसीमें ये प्रथम तीर्थंकर होकर मोक्ष जायेंगे। इस प्रकार और भी जो भव्य जीव इस व्रतका पालन करेंगे वे भी उत्तमोत्तम सुखोंको पाकर मोक्ष पद प्राप्त करेंगे।

बारहसौ चौंतीस व्रत, हेमवर्म नृप पाल।
नरसुरके सुख भोगकर, लहि मुक्ति गुणमाल॥

२८ श्री औषधिदान कथा

जन्म जरा अरु मरणके रोग रहित जिन देव।
औषधिदान तणी कथा कहूं करूं तिन सेव॥

सोरठ देशमें द्वारिका नगर है। यहां नवमें नारायण श्री कृष्णचंद्र राज्य करते थे। इनके सत्यभामा तथा रुक्मणी आदि सोलह हजार रानियां थी, जो परस्पर बहिन भावसे (प्रेमपूर्वक) रहती थी।

श्री कृष्ण प्रजा पालन और नीति न्यायादि कार्योंमें सम्पन्न थे। एक दिन ये श्री कृष्णजी स्वजनों सहित श्री नेमिनाथ प्रभुकी वन्दनाको जा रहे थे कि मार्गमें एक मुनि अत्यंत क्षीणशरिरी ध्यानस्थ देखे तो करुणा और भक्तिसे चित्त आर्द्रत हो गया और अपने साथवाले वैद्यसे कहाकि तुम रोगका निदान करके उत्तम प्रासुक औषधि तैयार करो जो कि मुनिराजको आहारके साथ दी जाय, जिससे रोग मिटकर रत्नत्रयकी वृद्धि हो।

वैद्यने राजाकी आज्ञा प्रमाण औषधि तैयार की और जब श्री मुनिराज चर्याको निकले तो कृष्णरायने विधिपूर्वक पडगाहकर नवधा भक्ति सहित श्री मुनिराजको भोजनके साथ औषधियुक्त तैयार किये हुए लाडूका आहार दिया, जिससे कृष्णरायके घर पंचाश्चर्य हुए और औषधिका निमित्त पाकर मुनिराजका रोग भी उपशम हुआ।

श्री कृष्णजी औषधिदानके प्रभावसे (वात्सल्य भावके कारण) तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध किया। किसी एक दिन श्री कृष्णराय पुनः मुनि दर्शनको गये सो भाग्यवशात् वे ही मुनि एक शिलापर ध्यानस्थ दिखायी दिये।

****

तब भक्ति सहित वन्दना करके राजाने मुनिराजके शरीरकी कुशल पूछी। तब शरीरसे सर्वथा निष्प्रेम उन मुनिराजने कहा—राजन! शरीर तो क्षणभंगुर है, इसकी कुशल अकुशलता ही क्या? ज्ञानी पुरुष इस पर वस्तु जानकर इसमें ममत्वभाव नहीं रखते हैं।

नाशवान देह तो किसी दिन निश्चय ही नष्ट होवेगा और यह आत्मा तो अविनाशी टंकोत्कीर्ण स्वभावसे ज्ञाता दृष्टा है। सो उसकी पुद्गलादि पर पदार्थ कुछ भी बाधा नहीं पहुँचा सकते हैं इत्यादि।

इस प्रकार मुनिराजके वचनोंसे राजाको बहुत आनन्द हुआ परंतु वह वैद्य जिसने औषधि बनाई थी, अपनी प्रशंसा न सुनकर तथा औषधि प्रयोगपर अपेक्षा भाव देखकर कुपित हुआ और मुनिकी कृत ध्वनि आदि शब्दोंसे निंदा करने लगा।

इससे वह तीर्यंच आयुका बन्ध करके उसी वनमें बन्दर (कपि) हुआ सो एक दिन जब कि वह बन्दर (वैद्यका जीव) वनमें एक वृक्षके उछलकर दूसरे पर, और दूसरे तीसरे वृक्ष पर जा रहा था, तब पवनके वेगसे उस वृक्षकी एक डाली जिसके नीचे मुनिराज बैठे थे, टूटकर उन पर पडा और उससे एक बडा घाव मुनिके शरीरमें हो गया, जिससे रक्त बहने लगा।

यह देखकर वह बन्दर कौतुकवश वहां आया और देखा कि मुनिराजके उपर वृक्षकी एक बडी डाल गिर पडी है और उससे घाव होकर लहु बह रहा है। मुनिको देखकर बन्दरको जातिस्मरण हो गया जिससे उसने जाना कि पूर्व भवमें मैं वैद्य था, और मैंने इन्हीं मुनिराजकी औषधि की थी परंतु उनके मुखसे प्रशंसा न सुनकर मैंने मान कषाय वश उनकी निंदा की थी कि जिससे कि मैं बन्दरकी योनिको प्राप्त हुआ।

यह विचारकर उस बन्दरने तुरंत ही मुनिराजके ऊपरसे ज्यों त्यों करके वह वृक्षकी डाली अलग कर दी। और जड़ीबूटी (औषधि) लाकर मुनिके घाव पर लगाई, जिससे मुनिराजको आराम हुआ। पश्चात् मुनिराजने उसे धर्मोपदेश दिया और अणुव्रत ग्रहण कराये सो उसने व्रतपूर्वक आयुके अन्तमें सात दिन पहिले सन्यास मरण किया, सो प्राण त्यागकर सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ।

इस प्रकार औषधिदानके प्रभावसे श्री कृष्णने तीर्थंकर प्रकृति बांधी और बन्दर भी अणुव्रत ग्रहण कर स्वर्ग गया। यदि अन्य भव्य जीव इसी प्रकार आहार, औषधि, अभय और विद्यादानमें प्रवृत्त होंगे तो अवश्य ही उत्तमोत्तम सुखोंको प्राप्त करेंगे।

औषधिदान प्रभाव से, श्रीकृष्ण नरराय।
अरु कपि पायो विमल सुख, देह सब मिल लाय॥

२९ श्री परधन लोभकी कथा

वीतरागके पद नमूं, नमूं गुरु निर्ग्रन्थ।
जा प्रसाद सब लोभ वश, हि मले मुक्तिको पन्थ॥

कपिला नगरीमें रत्नप्रभ राजा राज्य करता था। इसकी रानी विद्युतप्रभा थी। इसी नगरमें जीवदत्त और पिण्याकगन्ध नामके दो साहूकार थे। जिनदत्त तो धर्मात्मा और उदारचित्त था परंतु पिण्याकगन्ध बड़ा लोभी और पापी था। इसकी स्त्री भी इसके समान थी।

एक समय राजाने नगरमें तालाब खोदनेकी आज्ञा की सो तालाब खुदने लगा जब कुछ गहरा खुदा तो उसमेंसे

****
बहुतसे सोनेके खम्भे निकले, जो मिट्टीसे दबे रहनेके कारण मैले हो रहे थे और लोहेके समान प्रतीत होते थे।

सो मजदूर लोग उन्हें उठाकर बेचने ले गये। एक खम्भा इनमें सेठ जिनदत्तने भी लिया और जब पीछे जांच की तो सोनेका निकला, परंतु मूल्य लोहेका दिया था। जब शेष द्रव्यको अपना न समझकर उसने धर्मकार्योंमें लगा दिया, इस प्रकार यह परधनसे निवृत्ति लोभ होकर सानन्द रहने लगा। परंतु पिण्याकगन्ध जिसने बहुतसे खम्भे लोहेकी कीमतसे ले रखे थे और सोनेका जानता भी था उसने द्रव्यसे मोहित होकर संचित कर रखे।

एक दिन राजा तालाब देखनेको गया और एक खम्भा और भी पडा देखा सों जांच करने पर सोनेका प्रतीत हुआ। इसके पीछे और भी खुदाया तो वहां एक पेटी जिसमें ताम्रपत्र भी निकला। उस ताम्रपत्रमें १०० खम्भोंकी बात लिखी थी। तब राजाने शेष खम्भोंकी तलाश की तो मालूम हुआ कि एक खम्भा तो जिनदत्त सेठने मोल लिया है, ९८ पिण्याकगन्धने लिये हैं।

राजाने दोनों सेठको बुलाया सो जिनदत्त सेठने तो स्वीकार कर लिया और उस खम्भेसे उत्पन्न द्रव्यका हिसाब राजाको दिखाकर निर्दोष रीत्या छुटकारा पा गया। इतना ही नहीं राजाने उसकी सच्चाईसे प्रसन्न होकर उसकी प्रशंसा की और पारितोषिक भी दिया। परंतु पिण्याकगन्धने स्वीकार नहीं किया, इससे राजाने उसके घरका सब द्रव्य लुटया लिया।

ये सोनेके ९८ खम्भे जो लोहेकी किमत लिये थे सो तो गये ही, परंतु साथमें और भी ३२ करोड रूपयेकी सम्पत्ति भी गई।

पिण्याकगन्ध इस दु:खको सहन करनेमें असमर्थ था इसलिए उसने अपने पांयपर पत्थर पटककर आत्मघात कर प्राण छोडे और मरकर रौद्रध्यानसे छठवें नर्कमें गया।

जिनदत्त सेठ यह चरित्र देखकर विरक्त हो गया और तप कर आयुके अंतमें समाधिमरण करके स्वर्गमें देव हुआ। वास्तवमें लोभ बुरी वस्तु है। और तो क्या दशवें गुणस्थानका अव्यक्त लोभका उदय भी श्रेणि नहीं चढ़ने देता है और उपशम हुआ उपशांत मोही मुनिको ११ वें गुणस्थानसे प्रथममें गिरा देता है।

कविने कहा भी है 'लोभ पापका बाप बखाना' इसी लोभसे सत्यघोष भी मरकर राजाके भण्डारका सांप हुआ था। और भी जो इस प्रकारका पाप करता है उसे परभवमें तो दुःख होता ही है, परंतु इस भवमें भी राजा व पंचोंसे दण्डित होता है, दुःख पाता है व अपनी प्रतीति खो बैठता है, इसलिए परधनका लोभ त्यागनेसे भी निःसंकिता और सुख होता है।

पिण्याकगन्ध नरक हि गयो, परधन लोभ पसाय।
स्वर्ग गये जिनदत्तजी, परधन लोभ नशाय॥

३० श्री कवलचांद्रायण (कवलहार) व्रत कथा

पूर्वमें भूमण्डलमें चन्द्रसा कमलाय नामक प्रजापालक राजा था। जिसकी पतिव्रता रानीका नाम विनयश्री था, जो प्रजापालन न्यायनीतिसे करते थे। इतनेमें एक दिन राजा रानी वन उपवनमें क्रीडा करते थे सो वहां उन्होंने एक स्थान पर श्री शुभचंद्र नामक मुनि महाराजको देखा तो दोनोंने वहीं जाकर मुनिश्रीको वंदना की और उनके चरणमें विनयसे बैठे। फिर राजाने मुनिश्वरसे पूछा—महाराज! श्री कवलचांद्रायण नामक व्रत कैसे करना चाहिये, उसकी विधि क्या है तथा पूर्वमें किसने

यह व्रत करके उत्तम फल प्राप्त किया था, यह कृपा करके बतलाइये! तब मुनिराज बोले-

श्री कवलचांद्रायण व्रत एक माहका होता है व किसी भी महिनेमें इस प्रकार किया जा सकता है—प्रथम अमावस्याके दिन उपवास करना, फिर एकमके दिन एक ग्रास, दूजके दिन दो ग्रास, इस प्रकार चौदसको १४ ग्रास लेकर पूनमको उपवास करे फिर वदी १ को १४, दूजको १३, उस प्रकार घटाते घटाते जाकर वदी १४ को एक ग्रास आहार लेकर अमावस्याको उपवास करें तथा इन दिनोंमें आरम्भ व परिग्रहका त्याग करके श्री मंदिरजीमें श्री चंद्रप्रभुका पंचामृताभिषेक करके श्री चंद्रप्रभुकी पूजा देवशास्त्र, गुरुपूजा पूर्वक करें। तथा सारा दिन धर्मसेवनमें तथा शास्त्र स्वाध्यायादिमें व्यतीत करे। प्रतिपदाको पारणाके दिन किसी पात्रको भोजन कराकर पारणा करे। और अपनी शक्ति अनुसार चारों प्रकारका दान करे और यथा शक्ति उद्यापन भी करे जिसमें ३० फल व ३० शास्त्र बांटे।

श्री महावीर प्रभु राजा श्रेणिकसे कहते हैं—राजन! महा तपस्वी श्री बाहुबलिजीने इस कवलचांद्रायण व्रतको किया था जिसके प्रभावसे उनको केवलज्ञान प्राप्त हुआ था तथा श्री ऋषभदेवकी पुत्री ब्राह्मी व सुन्दरीने भी यह व्रत किया था जिसके प्रभावसे वे दोनों स्त्रीलिंग छेदकर अच्युत स्वर्गमें यतीन्द्र हुये थे, और वहांसे चयकर मनुष्य भव लेकर मुनि पद लेकर उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया था। अत: जो कोई मुनि, आर्जिका, श्रावक, श्राविका यह व्रत करेंगे वे यथा शक्ति स्वर्ग मोक्षको प्राप्त करेंगे और जो पंच पाप, सात व्यसन और चार कषायोंको त्यागकर शुद्ध भावसे इस व्रतको करेंगे वे एक दो भव धारण करके मोक्षको जायेंगे।

३१ श्री ज्येष्ठ जिनवर व्रत कथा

श्री जिनराज ऋषभदेवको नमस्कार करता हूँ, सुख सिद्धिके हेतु शारदा (सरस्वती–जिनवाणी) को नमस्कार करता हूँ और शुभमति (सद्बुद्धि) प्राप्तिके लिए गौतम गणराजाको नमस्कार कर ज्येष्ठ जिनवर व्रतकी कथा कहता हूँ।

भरतक्षेत्रमें आर्यखण्डमें गुजरात नामका देश है जिसमें सुप्रसिद्ध खम्भपुरी (वर्तमान खंभात Cambay) नामकी नगरी है। इस नगरीका शासक चंद्रशेखर राजा था जो कि गुणवान था और उसकी रानी चंद्रमती थी। इसी नगरीमें एक सोमशर्मा ब्राह्मण था जो अपनी सोमिल्या पत्नीके साथ सुखपूर्वक रहता था। सोमशर्मा ब्राह्मणके जड़ नामक बालक एक पुत्र था और इस जड़ बालकको सोमश्री नामक स्त्री थी।

अपने पिता सोमशर्माकी मृत्यु जड़ बालकको अत्यंत दु:ख हुआ। सोमिल्या सासने सोमश्रीको रजत कलश भरनेको दिये और कहा–ये कलश ब्राह्मणोंके घर भेज देना तथा पीपर (पिप्पल वृक्ष) को जल चढाना। सासकी आज्ञा लेकर सोमश्री पनघट पर गई वहां उसे एक सखी मिली तो वह खडी हो गई। वहां एक बडा जैन मंदिर था, सखीने कहा कि आज नगरीके सब लोग यहां पूजन करते हैं।

सोमश्रीने यह सुना और उसकी बुद्धि जाग्रत हुई, और कलशमें पानी भरकर जैन चैत्यालय गयी तो वहां गुरुके पास ज्येष्ठ जिनवर व्रत लिया, जिसकी संक्षिप्त विधि निम्न प्रकार है–

यह व्रत ज्येष्ठ महीनेमें किया जाता है। ज्येष्ठ कृ. १ (गुजराती वैशाख कृ. १) को उपवास फिर १४ एकाशन, व ज्येष्ठ शु. १ को प्रोषधोपवासके बाद फिर १४ एकाशन, इस

****

प्रकार एक मास पर्यन्त २८ एकाशन और २ उपवास किये जाते हैं। और प्रतिदिन ऋषभनाथ भगवानकी कलशाभिषेक पूर्वक पूजन गीत नृत्य और संगीतके साथ करना चाहिए, और अत्यंत उत्साह पूर्वक शास्त्रोक्त विधिके अनुसार इस व्रतका पालन करना चाहिए। ज्येष्ठ जिनवर व्रत उत्कृष्ट २४ वर्ष और मध्यम १२ वर्ष तक व जघन्य १ वर्ष भी किया जाता है। यह व्रत लेकर सोमश्रीने जिनेन्द्र भगवानकी पूजन कर संपूर्ण मिथ्याबुद्धिका परिहार किया तो किसी दुष्टने सोमश्रीकी साससे कहा कि तुम्हारी बहु तो चैत्यालय (जिन मंदिर) गई हैं और उस कलश द्वारा जिनेन्द्र भगवानका अभिषेक किया गया है। यह सुनते ही सोमिल्या सास अत्यंत कुपित हुई।

सोमश्री जब अपने घर आई तो सासने कड़वे वचन कहे और कहने लगी कि तू मेरे घर तभी आ सकती है जब कि मेरा घड़ा ले आयेगी। सासके ऐसे वचन सुनकर सोमश्री माथा धुनने लगी और वह वहां गई जहां कि कुम्हार रहता था।

कुम्हारसे कहा—भाई! मेरी बात सुनो, तुम यह सोनेका कंगन (कड़ा चुरा) ले लो और ३० दिन तक एक मिट्टीका घड़ा प्रतिदिन देते रहो। कुम्हारने वह कंगन नहीं लिया और सोमश्रीको घड़ा दिया वह कहने लगा—हे पुत्री! तुझे धन्य है, तुझे धन्य है, तू व्रत (ज्येष्ठ जिनवर) पालन कर और मुझसे प्रतिदिन घड़ा लेती रहना। सोमश्रीने ज्येष्ठ मास तक यह व्रत किया तथा कुम्हारसे घड़ा लेती रही और पानी भरकर घड़े सासको देती रही।

व्रतकी अनुमोदनापूर्वक कुम्हारकी मृत्यु हुई, और वह श्रीधर नामका राजा हुआ और विधि सहित व्रतका पालन कर सोमश्री इसी श्रीधर राजाकी पुत्री हुई जिसका नाम कुम्भश्री रखा गया

जो कि हमेसा ही अपने ह्रदयमें जिनेन्द्र भगवानका मंदिर बनाये थीं।

इस प्रकार बहुतसा समय व्यतीत हो गया। एक दिन वहां मुनिराजका शुभागमन हुआ, तो नगरके सभी लोग आनंदित हुये और राजा अपने परिजन सहित मुनिकी वंदनार्थ गया।

मुनिवरने दो प्रकारके धर्म (मुनि और श्रावक) का उपदेश दिया जिससे सुनकर राजाको महान् हर्ष हुआ। उस समय सोमिल्या (पूर्वभवकी सोमश्रीकी सास) भी वहां थी जो कि अत्यंत दुःखी और दरिद्रावस्थामें थी। राजाने पूछा–हे मुनिवर! इस सोमिल्याने ऐसा कौनसा पाप किया है जो इस प्रकार दुःखी है?

मुनिराजने अवधिज्ञानसे बताया कि यह सोमश्रीकी सास है, ज्येष्ठ जिनवर व्रतकी निन्दा करनेसे उसके फलको यह भोग रही है। इसके मस्तिष्कमें जो कुम्भ नामक रोग है यह पूर्वोपार्जित अशुभ कर्मोका फल है, सोमश्री मरकर हे राजन! कुम्भश्री नामसे तेरी पुत्री हुयी जो कि सर्वगुण संपन्न है। कुम्भश्रीने हाथ जोड़कर कहा–

हे मुनिनाथ! मुझपर कृपा करो। मेरी सास अत्यंत दुःखित और विकृत शरीर है। आप ऐसा उपदेश दे जिससे इनके सर्व दुःख दूर हो जाये। ऋषिराजने कहा–तू इसका स्पर्श कर और गंधोदक छिड़क तथा यह जिनेन्द्र भगवानके चरण–कमलोंका सेवन करे जिससे इसकी सब दरिद्रता और दुःख शीघ्र ही मिट जावेंगे।

तब कुम्भश्रीने उसपर उपकार किया तो उस दुर्गन्धा सोमिल्याकी विकृति (विवर्ण एवं कुरूपता) नष्ट हो गई, फिर सोमिल्या आर्जिका हुई व तप करके प्रथम स्वर्गमें देव हुई।

****

कुम्भश्रीने पुन: दूसरीबार इस ज्येष्ठ जिनवर व्रतका पालन किया और दूसरे स्वर्गमें देव हुई। यह देव क्रमश: मुक्ति प्राप्त करेगा। भव्य जीवोंको यह व्रत विधि सहित पालन करना चाहिए।

गहेली नगरमें मुझ शुभ मतिके द्वारा वीर सं. १७५८ ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी गुरुवारको यह कथा रची गई है। जो नरनारी इस व्रतका पालन करता है उसे देवगति मिलती है और वह इन्द्र होता है, रोग, शोक, संकट आदि सब दु:ख दूर होते हैं और उसके लिये जिनेन्द्र भगवान सहायी बनते हैं। जो नरनारी एकचित्त होकर इस व्रतका पालन करते हैं उन्हें मनवांछित सुख-सम्पत्ति प्राप्त होती है।

३२ श्री णमोकार पैंतिसी व्रत

यह व्रत १।। वर्ष अर्थात् एक वर्ष और छ: मासमें समाप्त होता है। और इस डेढ़ वर्ष अवधिके भीतर सिर्फ पैंतीस दिन ही व्रतके होते हैं। आषाढ सुदी ७ से यह व्रत शुरू होता है जिसकी विधि इस प्रकार है–

१–प्रथम आषाढ सुदी ७ का उपवास करे। फिर श्रावणकी सप्तमी २, भादोंकी सप्तमी २ और आश्विनकी सप्तमी २ इस प्रकार सात उपवास करे। पश्चात् कार्तिक कृष्ण पंचमीको पौष कृष्ण पंचमी अर्थात् पांच पंचमियोंके पांच उपवास करे। फिर पौष कृष्ण चतुर्दशीसे चैत्र कृष्ण चतुर्दशी तक सात चतुर्दशीयों के सात उपवास करे। फिर चैत्र शुक्ल चतुर्दशीसे आषाढ कृष्ण चतुर्दशी तक सात चतुर्दशीयोंके सात उपवास करे। फिर श्रावण कृष्ण नवमीसे अगहन कृष्ण नवमी तक नवमियोंके नव उपवास करे।

****

इस प्रकार ३५ उपवास द्वारा यह व्रत पूरा करे। प्रतिदिन अभिषेकपूर्वक नवकार मंत्र पूजन करे। पश्चात् उद्यापन करे।

इस णमोकार मंत्र पैंतीसी व्रतके प्रभावसे तो गोपाल नामक ग्वाला चम्पानगरीमें ऋषभदत्त सेठके यहां सुदर्शन नामका पुत्र हुआ था और वह निमित्त पाकर वैराग्य धारण कर उसने कर्मोंका नाशकर मोक्ष प्राप्त किया।

३३-श्री बृहत् सिंहनिष्क्रीडित व्रत

यह व्रत १७७ दिन में समाप्त होता है जिसमें १४५ उपवास और ३२ पारणाएं होता है।

३४-लघु सिंह निष्क्रीडित व्रत

यह व्रत ८० दिनमें पूरा होता है। इसमें ६० उपवास और २२ पारणायें होता है।

३५-महासर्वतोभद्र व्रत

यह व्रत २४५ दिन में पूरा होता है जिसमें १९४ उपवास और ४९ पारणे होते हैं।

३६-सर्वतोभद्र व्रत

यह व्रत १०० दिनमें पूर्ण होता है जिसमें ७५ उपवास और २५ पारणा होते हैं।

३७-मुक्तावलि व्रत

यह व्रत बृहत्, मध्यम और लघु तीन प्रकारका होता है- बृहत्में २५ उपवास व ९ पारणा होता है।

मध्यममें ४९ उपवास और १३-१३ पारणा होता है।

लघुमें प्रत्येक वर्षमें ९ अर्थात् ९ वर्षोंमें ८१ उपवास करने होते हैं।

****

यह व्रत दुर्गन्धा नामकी ब्राह्मण पुत्रीने किया था जिसके प्रसादसे प्रथम स्वर्गमें वह देव हुई और वहांसे चयकर मथुरामें श्रीधर रानीके यहां पद्मरथ नामका पुत्र हुआ था और वासुपूज्यस्वामीके समवशरणमें दीक्षा लेकर उनका गणधर हुआ और कर्म नाशकर मोक्ष प्राप्त किया।

(३८) कर्मनिर्जरा व्रत

यह व्रत आषाढ, श्रावण, भादों व आसोजकी चतुर्दशियोंके ४ उपवास करनेसे होता है और उसमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र व तपके नमस्कारपूर्वक जाप करना पडता है।

यह व्रत सेठकी पुत्री धनश्रीने किया था, जिनके प्रभावसे वह स्वर्गके अनुपम सुखको प्राप्त हुई थी।

(३९) शिवकुमार बेला व्रत

यह व्रत १६ महिनेमें समाप्त होता है जिसमें ६४ बेला और ६४ पारणा होता हैं। इस व्रतकी कथा इस प्रकार है—

विदेह क्षेत्रके पुष्कलावती देशमें वीतशोकापुरी नामकी नगरी है। उसमें महापद्म नामके चक्रवर्ती थे। उनकी वनमाला नामकी एक रानी थी। भवदेव ब्राह्मणका जीव जो तीसरे स्वर्गमें देव हुआ था वहांसे चयकर इस रानीके गर्भमें आया और शिवकुमार नामका पुत्र हुआ। इसने यह व्रत किया जिसके प्रभावसे वह छठवें स्वर्गमें इन्द्र हुआ और वहांसे आकर मगधदेशकी राजगृही नगरीमें अर्हदास सेठकी जिनमती सेठानीके गर्भसे जम्बूस्वामी उत्पन्न हुए और लौकिक सुखोंको तिलांजलि देकर दीक्षा धार कर्म नाश कर विपुलाचल पर्वतसे मोक्ष प्राप्त किया।

४० श्री अक्षयतृतीया व्रत कथा

जम्बूद्वीपमें भरतक्षेत्रके अन्दर राजगृह नामकी एक सुन्दर नगरी है। वहां मेघनाद नामका महा मण्डलेश्वर राजा राज्य करता था। वह रूप लावण्यसे अत्यन्त सुन्दर था वह रूपवानके साथ साथ बलवान एवं योद्धा भी था। उसकी पट्टरानीका नाम पृथ्वीदेवी था। वह अति रूपवान व जैनधर्म रत थी। उसे जैन धर्म पर पक्का श्रद्धान था। राजा मेघनादके राज्यमें सारी प्रजा प्रसन्न थी। राजा बडे विनोदके साथ राज्य कर रहा था।

एक दिन पट्टराणी पृथ्वीदेवी अपनी अन्य सहेलियोंके साथ अपने महलकी सातवीं मंजिलसे दिशावलोकन कर रही थी आनंदसे बैठी बैठी विनोदकी बातें कर रही थी तब उसने देखा कि बहुतसे विद्यार्थी विद्या पढकर अपने घर आ रहे थे जो खेलने कुदनेमें इतने मग्न थे कि उनका सारा बदन धूलसे सना हुआ था। आठों अंग खेलनेमें क्रियारत थे।

राणीने उक्त बालकोंकी सारी क्रिया देखी तो उसका चित्त विचारमग्न हो गया। राणीको कोई पुत्र नहीं था। बालकोंका अभिनय देखकर उसे अपने पुत्र न होनेका दुःख हुआ। दिलमें विचार किया कि जिस स्त्रीके कुखसे पुत्र जन्म नहीं होता उसका जीना इस संसारमें वृथा है। इन्हीं विचारधाराओंके साथ वह नीचे आई तथा चिंताका शरीर बनाकर शयनकक्षमें जाकर सो गई। कुछ समय पश्चात् राजा उधर आया तो उसने राणीको इस तरह देखकर विस्मितता प्रगट की।

राणीसे पूछा–प्रिये! आज आप इतनी चिंतित क्यों हो? राणी चूप रही। पुनः राजाने प्रश्न किया, अनेकबार राजाके प्रश्न करने

****

पर उसने जवाब दिया, हे राजन्! अपने कोई संतान नहीं है और यह समस्त राज वैभव संतानके अभावमें व्यर्थ है।

राजाने उसे धैर्य बंधाते हुए जवाब दिया—इसमें किसके हाथकी बात है जो होनहार होता है वह होता है। हमारे अशुभ कर्मोंका उदय है इसमें चिंता करनेसे क्या हो! यदि भाग्यमें होगा तो अवश्य—किन्तु!

होनहार होगा वही, विधिने दिया रचाय।
'विमल' पुण्य प्रभावसे, सुख सम्पत्ति बहु पाय॥

कुछ समय बीता, नगरके बाहर उद्यानमें सिद्धवरकूट चैत्यालयकी वंदना हेतु पूर्व विदेह क्षेत्रमें सुप्रभ नामके चारणऋद्धिधारी मुनिश्वर आकाश मार्गसे पधारे। वनमाली यह सब देख अत्यंत प्रफुल्लित हुआ और वह गया फूलवारीके पास और अनेक प्रकारके फलफूल आदिसे डाली सजाकर प्रसन्न चित्तसे राजाके पास जाकर निवेदन किया—

हे राजन्! श्रीमानके उद्यानमें सुप्रभ चारण ऋद्धिधारी मुनिराज पधारे हैं।

राजा सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुआ। उसी समय सिंहासनसे उतरकर १० कदम आगे बढ मुनिराजको साष्टांग परोक्ष प्रणाम किया। तथा प्रसन्नचित्त हो वनमालीको वस्त्राभूषण धनादि ईनाम देकर प्रसन्न किया।

सारे नगरमें आनंद भेरी बजवाई। आनंद भेरी सुनकर सब नगर निवासियोंने राजाके साथ चारण ऋद्धिधारी मुनिको वन्दनाको प्रस्थान किया।

राजाने अपने साथमें अत्यंत सुंदर अष्ट द्रव्य मुनि पूजा हेतु लिये और अनेक गाजे बाजे दुन्दुभिके साथ उद्यानमें पहुंचा,

वहां पहुँचकर चैत्यालयकी वंदना की, सर्व प्रथम चैत्यालयको तीन प्रदक्षिणा दी तथा भगवानकी स्तुति स्तवन रूप स्तवन या गुण स्तवन करता हुआ साष्टांग नमस्कार किया।

फिर भगवानको मणिमय सिंहासन पर बिराजमान कर बडे उत्साहके साथ पंचामृत कलशाभिषेक किया व अष्ट द्रव्योंसे पूजा की। भगवत् आराधनाके पश्चात् राजा मुनिराजके पास पहुंचा व नमस्कार कर चरण समीप बैठ गया और मुनिराजसे प्रार्थना की–हे मुनिवर! कृपाकर धर्म श्रवण कराओ।

उधर राणी पृथ्वीदेवीने (राजाकी पट्टरानीने) दोनों कर जोडे विनम्र निवेदन किया कि हे मुनिवर! इस भवमें मुझे सब सुख प्राप्त हैं, परंतु संतानके अभावमें मेरा जन्म निरर्थक हैं।

कुछ क्षण रूककर मुनिराजने जवाब दिया कि हे देवी! तुम्हारे अंतराय कर्मका उदय है, अस्तु तुम्हारे कोई संतान नहीं है। रानीने पुन: निवेदन किया कि हे महाराज! ऐसा कोनसा पूर्वभवका उदय है, कृपाकर समझाइये, अर्थात् मेरे अंतराय कर्म होनेका पूर्व भव सुनाइये–

भरतक्षेत्रमें काश्मीर नामका एक विशाल देश हैं जिसमें रत्नसंचयपुर नामका एक सुन्दर नगर हैं। वहां एक वैश्य कुलमें उत्पन्न श्रीवत्स नामका राजा सेठ रहता था। जिसकी सेठानीका नाम श्रीमती था। वह अत्यंत सुंदर एवं गुणवान थी। दोनों सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते थे। तब इसी नगरमें चैत्यालयकी वंदना हेतु मुनिगुप्त नामके दिव्यज्ञान धारी अन्य ५०० मुनियोंके साथ पधारे।

मुनिगणके दर्शन पाकर राजा सेठ अत्यंत प्रसन्न हुआ और अपना जन्म सफल समझा। उसने मुनि महाराजको नमोस्तु कर मुनिसंघको अपने उद्यानमें ले गया। घर जाकर अपनी स्त्री श्रीमतीसे कहा कि तुम आहारकी व्यवस्था शीघ्र करो, आज हमारा पुण्योदय हैं जिससे विशाल मुनि संघका आगमन हुआ है।

* *

किंतु सेठानीने सुनी अनसुनी कर दी और कोई व्यवस्था नहीं की। सेठ स्वयं आया और शुद्धतापूर्वक बहुतसे पकवान तैयार कर सात गुणोंसे नवधा भक्तिपूर्वक आहार दिया। सबके निरंतराय आहारसे वह बहुत संतुष्ट हुआ। महाराजने सेठको 'अक्षयदानमस्तु' नामका आशिर्वाद दे विहार किया।

इधर सेठानी श्रीमती अत्यंत क्रोधित हुई और अन्तराय कर्मका बन्ध हो गया, उसी अन्तराय कर्मसे तेरे इस भवमें संतान नहीं हैं।

रानीने मुनि महाराजके मुंहसे अपना पूर्व भव सुना तो वह अपने कुकृत्य पर अत्यंत दुःखी हुई और प्रार्थना की कि हे मुनिराज! अंतराय कर्म नष्ट हो इसके लिये कोई उपाय बताओ जिससे मुझे संतान-सुखकी प्राप्ति हो।

मुनिने कहा—हे महादेवी! तुम अपने कर्मोंका क्षय करने हेतु अक्षयतृतीया व्रत विधि पूर्वक करो। यह व्रत सर्व सुखको देनेवाला तथा अपनी इष्ट पूर्ति करनेवाला हैं।

राणीने प्रश्न किया—हे मुनिवर! यह व्रत पहिले किसने किया और क्या फल पाया? इसकी कथा सुनाइये—

मुनिराजने कहा कि राणी! इसकी भी पूर्वकथा सुनो—

विशाल जम्बूद्वीपमें भरतक्षेत्रके विषे मगधदेश नामका एक देश हैं। उसी देशमें एक नदीके किनारे सहस्त्रकूट नामका चैत्यालय स्थित हैं। उस चैत्यालयकी वंदना हेतु एक धनिक नामका वैश्य अपनी सुंदरी नामा स्त्री सहित गया। वहां कुण्डल पंडित नामका एक विद्याधर अपनी स्त्री मनोरमा देवी सहित उक्त व्रत (अक्षय तीज व्रत) का विधान कर रहे थे। उस समय (पति पत्नी) धनिक सेठ व सुंदरी नामा स्त्रीने विद्याधर युगलसे पूछा कि यह आप क्या कर रहे हो—अर्थात् यह किस व्रतका विधान है?

विद्याधरने जवाब दिया कि इस अवसर्पिणीकालमें अयोध्या नगरीमें पहिले नाभिराय नामके अंतिम मनु हुए। उनके मरुदेवी नामकी पट्टराणी थी। राणीके गर्भमें जब प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ आये तब गर्भकल्याणक उत्सव देवोंने बडे ठाठसे मनाया और जन्म होनेपर जन्म कल्याणक मनाया। फिर दीक्षा कल्याणक होनेके बाद आदिनाथजीने छ: मास तक घोर तपस्या की। छ: माहके बाद चर्या (आहार) विधिके लिए आदिनाथ भगवानने अनेक ग्रामके नगर शहरमें विहार किया किंतु जनता व राजलोगोंको आहारकी विधि मालूम न होनेके कारण भगवानको धन, कन्या, पैसा, सवारी आदि अनेक वस्तु भेंट की। भगवानके यह सब अंतरायका कारण जानकर पुन: वनमें पहुँच छ: माहकी तपश्चरण योग धारण कर लिया।

अवधि पूर्ण होनेके बाद पारणा करनेके लिये चर्या मार्गसे इर्यापथ शुद्ध करते हुए ग्राम नगरमें भ्रमण करते करते कुरुजांगल नामक देशमें पधारे। वहां हस्तिनापुर नामके नगरमें कुरुवंशका शिरोमणि महाराजा सोम राज्य करते थे। उनके श्रेयांस नामका एक भाई था उसने सर्वार्थसिद्धि नामक स्थानसे चयकर यहां जन्म लिया था।

एक दिन रात्रिके समय सोते हुए उसे रात्रिके आखिरी भागमें कुछ स्वप्न आये। उन स्वप्नोंमें मंदिर, कल्पवृक्ष सिंह, वृषभ, चंद्र, सूर्य, समुद्र, आग, मंगल, द्रव्य यह अपने राजमहलके समक्ष स्थित हैं ऐसा उस स्वप्नमें देखा तदनंतर प्रभातवेलामें उठकर उक्त स्वप्न अपने ज्येष्ठ भ्राताले कहा—तब ज्येष्ठ भ्राता सोमप्रभने अपने विद्वान पुरोहितको बुलाकर स्वप्नोंका फल पूछा। पुरोहितने जवाब दिया हे राजन्! आपके घर श्री आदिनाथ भगवान पारणाके लिये पधारेंगे, इससे सबको आनंद हुआ।

****

इधर भगवान आदिनाथ आहार हेतु इर्या समितिपूर्वक भ्रमण करते हुए उस नगरके राजमहलके सामने पधारे तब सिद्धार्थ नामका कल्पवृक्ष ही मानो अपने सामने आया है-ऐसा सबको भास हुआ। राजा श्रेयांसको आदिनाथ भगवानका श्रीमुख देखते ही उसी क्षण अपने पूर्वभवमें श्रीमती वज्र जंघकी अवस्थामें एक सरोवरके किनारे दो चारण मुनियोंको आहार दिया था-उसका जातिस्मरण हो गया। अतः आहार दानकी समस्त विधि जानकर श्री आदिनाथ भगवानको तीन प्रदक्षिणा देकर पडगाहन किया व भोजनगृहमें ले गये।

'प्रथम दान विधि कर्ता' ऐसा यह दाता श्रेयांस राजा और उनकी धर्मपत्नी सुमतीदेवी व ज्येष्ठ बंधु सोमप्रभ राजा अपनी पत्नी लक्ष्मीमती सहित आदि सबोंने मिलकर श्री आदिनाथ भगवानको सुवर्ण कलशों द्वारा तीन खण्डी (बंगाली तोल) इक्षुरस नवधा भक्तिपूर्वक आहारमें दिया। तीन खण्डोंमेंसे एक खण्डी इक्षुरस तो अंजूलीमें होकर निकल गया और दो खण्डीरस पेटमें गया।

इस प्रकार भगवान आदिनाथकी आहार चर्या निरन्तराय सम्पन्न हुई। इस कारण उसी वक्त स्वर्गके देवोंने अत्यंत हर्षित होकर पंचाश्चर्य (रत्न-वृष्टि, पुष्पवृष्टि गन्धोदक वृष्टि देव दुंदुभि, बाजोंका बजना व जय जयकार शब्दका होना) वृष्टि हुई और सबोंने मिलकर अत्यंत प्रसन्नता मनाई।

आहार चर्या करके वापिस जाते हुए भगव आदिनाथने सब दाताओंको 'अक्षयदानस्तु' अर्थात् दान इसी प्रक कायम रहें। इस आशयका आशिर्वाद दिया, यह आहार वैशाख सुदी तीजको सम्पन्न हुआ था।

जब आदिनाथ निरन्तराय आहार करके वापिस विहार कर गये। उसी समयसे अक्षयतीज नामका पुण्य दिवस प्रारंभ हुआ। (इसीको आखा तीज भी कहते हैं) यह दिन हिंदु धर्ममें भी बहुत पवित्र माना जाता हैं। इस रोज शादी विवाह प्रचुर मात्रामें होते हैं।

श्रेयांस राजाने आदि तीर्थंकरको आहार देकर दानकी उन्नति की दानको प्रारंभ किया। इस प्रकार दानकी उन्नति व महिमा समझकर भरतचक्रवर्ती, अकम्पन आदि राजपुत्र व सपरिवारसहित श्रेयांस व उनके सह राजाओंका आदरके साथ सत्कार किया। प्रसन्नचित्त हो अपने नगरको वापिस आये।

उक्त सर्व वृत्तांत (कथा) सुप्रभनामके चारण मुनिके मुखसे पृथ्वीदेवीने एकाग्र चित्तसे श्रवण किया। वह बहुत प्रसन्न हुई। उसने मुनिको नमस्कार किया। तथा उक्त अक्षयतीज व्रतको ग्रहण करके सर्व जन परिजन सहित अपने नगरको वापिस आये। पृथ्वीदेवीने (समयानुसार) उस व्रतकी विधि अनुसार सम्पन्न किया। पश्चात् यथाशक्य उद्यापन किया। चारों प्रकारके दान चारों संघको बांटे। मंदिरोंमें मूर्तियां विराजमान की। चमर, छत्र आदि बहुतसे वस्त्राभूषण मंदिरजीको भेट चढाये।

उक्त व्रतके प्रभावसे उसने ३२ पुत्र और ३२ कन्याओंका जन्म दिया। साथ ही बहुतसा वैभव और धन कंचन प्राप्त कराया आदि ऐश्वर्यसे संमृद्ध होकर बहुत काल तक अपने पति सहित राज्यका भोग किया और अनंत ऐश्वर्यको प्राप्त किया।

पश्चात् वह दम्पति वैराग्य प्रवर होकर जिनदीक्षा धारण करके 'तपश्चर्या' करने लगे। और तपोबलसे मोक्ष सुखको प्राप्त किया। अस्तु! हे भविकजनों! तुम भी इस प्रकार अक्षय तृतीया व्रतको विधिपूर्वक पालन कर यथाशक्ति उद्यापन कर अक्षय सुख प्राप्त करो। यह व्रत सब सुखोंको देने वाला है व क्रमश: मोक्ष सुखकी प्राप्ति होती है।

इस व्रतकी विधि इस प्रकार है—

यह व्रत वैशाख सुदी तीजसे प्रारंभ होता है। और वैशाख सुदी सप्तमी तक (५ दिन पर्यंत) किया जाता है। पांचों दिन शुद्धतापूर्वक एकाशन करे या २ उपवास या ३ एकाशन करे।

इसकी विधि यह है कि व्रतकी अवधिमें प्रातः नैत्यिक क्रियासे निवृत्त होकर मंदिरजीको जावे। मंदिरजीमें जाकर शुद्ध भावोंसे भगवानकी दर्शन स्तुति करे। पश्चात भगवानको (आदिनाथ भगवानकी प्रतिमाको) सिंहासन पर विराजमान कर कलशाभिषेक करे। फिर नित्य पूजा, भगवान आदि तीर्थंकर (आदिनाथजी) की पूजा एवं पंचकल्याणकका मण्डलजी मंडवाकर मण्डलजीकी पूजा करे। तीनों काल (प्रातः मध्याह्न, सायं) निम्नलिखित मंत्रका जाप्य (माला) करें वह सामायिक करें।

मंत्र- ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ए अर्हं आदिनाथ तीर्थंकराय गोमुख चक्रेश्वरी यक्ष यक्षी सहिताय नमः स्वाहा। प्रातः सायं-णमोकार मंत्रका शुद्धोच्चारण करते हुए जाप्य करे।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं॥

व्रतके समयमें गृहादि समस्त क्रियाओंसे दूर रहकर स्वाध्याय, भजन, कीर्तन आदिमें समय यापन करे रात्रिमें जागरण करे। दिनभर जिनचैत्यालयमें ही रहें। व्रत अवधिमें ब्रह्मचर्यसे रहे। हिंसादि पांचों पापोंका अणुव्रत रूपसे त्याग करे। क्रोध, मान, माया, लोभ, कषायोंको शमन करे।

पूजनादिके पश्चात प्रतिदिन मुनिश्वरादि चार प्रकारके संघको चारों प्रकारका दान देवें, आहार करावे, फिर स्वयं पारणा करे। प्रतिदिन अक्षय तीज व्रतकी कथा सुने व सुनावे।

(नोट-व्रतके समय स्त्री यदि रजस्वला हो जावे तो प्रतिदिन (एक) रस छोड़कर पारणा करे)।

इस प्रकार विधिपूर्वक व्रतको ५ वर्ष करे। व्रत पूर्ण होनेपर यथाशक्ति उद्यापन करे। भगवान आदिनाथकी प्रतिमा मंदिरजीमें भेंट करे तथा चार संघको चार प्रकारका दान देवें।

इस प्रकार शुद्धतापूर्वक विधिवत् व्रत करनेसे सर्व सुखकी प्राप्ति होती है तथा साथ ही क्रमसे अक्षय सुख अर्थात् मोक्षकी प्राप्ति होती है।

(समाप्त)